जयधर्मसूरि स्मारक अर्बुद ग्रन्थमाला—ग्रन्थ

* ॐ *

आबू

(सचित्र)

प्रथम भाग

व्याख्यान चूडामणि शासनदीपक

श्रीमद् विद्याविजयजी महाराज

लिखित उपोद्घात सहित

लेखक—

शान्तमूर्त्ति मुनिराज

श्रीमद् जयन्तविजयजी महाराज

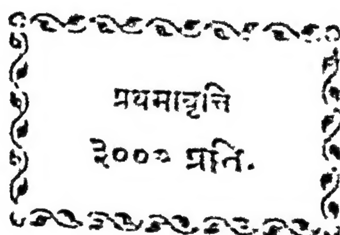
र सं० २४५९ }
र्म सं० ११ } मूल्य २॥) रुपये { वि० सं० १९९०
{ सन् १९३३ ई०

प्रकाशक—
मैनेजिंग कमिटी,
सेठ कल्याणजी परमानन्दजी
देलवाड़ा (आबू)-सिरोही









प्रथमावृत्ति
२००० प्रति.







मुद्रक—
के. हमीरमल लूणियां
दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गवर्नमेण्ट म्यूज़ियम अजमेर के क्युरेटर राय-बहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी ओझा, रोहिड़ा (राज्य सिरोही) निवासी का माननीय पत्र।

अजमेर तारीख १६-८-१९३३

श्रीमान् परम श्रद्धेय श्री जयन्तविजयजी महाराज के चरणसरोज में सेवक गौरीशंकर हीराचंद ओझा का दंडवत् प्रणाम अपरञ्च आपका कृपा पत्र ता० १०-८-१९३३ का मिला आपने बड़ी कृपा कर आपके 'आबू' नामक पुस्तक का प्रथम भाग प्रदान किया जिसके लिए अनेक धन्यवाद हैं।

आपका ग्रन्थ जैन समुदाय के लिए ही नहीं किन्तु इतिहास प्रेमियों के लिए भी बड़े महत्त्व का है। आपने यह पुस्तक प्रकाशित कर आबू के इतिहास और वहाँ के सुप्रसिद्ध स्थानों को जानने की इच्छा वालों के लिए बहुत ही बड़ी सामग्री उपस्थित की है। विमलवसहि, वहां की हस्तिशाला, श्री महावीर स्वामी का मंदिर, लूणवसहि, भीमाशाह का मंदिर, चौमुखजी का मन्दिर, ओरिया और अचलगढ़ के जैन मन्दिर का जो विवेचन दिया है, वह

महान् श्रम और प्रकाण्ड पांडित्य का सूचक है। आपने केवल जैन स्थानों का ही नहीं, किन्तु हिन्दुओं के अनेक तीर्थों तथा आबू के अन्य दर्शनीय स्थानों का जो व्यौरा दिया है, वह भी बड़े काम की चीज़ है।

आपका यत्न बहुत ही सराहनीय है। इस पुस्तक में जो आपने अनेक चित्र दिए हैं, वे सोने (के स्थानों) में सुगन्धी का काम देते हैं। घर बैठे आबू का सविस्तार हाल जानने वालों पर भी आपने बहुत बड़ा उपकार किया है। आबू के विषय में ऐसी बहुमूल्य पुस्तक और कोई नहीं है। आपके यत्न की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। श्री विजयधर्मसूरिजी महाराज के स्मारक रूप अर्बुद ग्रंथमाला का यह पहिला ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में इतिहास की अपूर्व श्रीवृद्धि करने वाला है। मुझे भी मेरे सिरोही राज्य के इतिहास का दूसरा संस्करण प्रकाशित करने में इससे अमूल्य सहायता मिलेगी।

आपके महान् श्रम की सफलता तो तब ही समझी जायेगी जब कि आपके संग्रह किये हुए सैकड़ों लेख प्रकाशित हो जायेंगे। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन लेखों का छपना भी प्रारंभ हो गया है। जैन गृहस्थों

में अभी तक धर्म भावना बहुतायत से है, अतएव आपके ग्रन्थों का प्रकाशित होना कठिन काम नहीं है। आशा है कि आपके लेख शीघ्र प्रकाशित हो जायेंगे और आबू पर के समस्त जैन स्थानों और उनके निर्माताओं का इतिहास जानने वालों को और भी लाभ पहुंचेगा। आप परोपकार की दृष्टि से जो सेवा कर रहे हैं, उसकी प्रशंसा करना मेरी लेखनी के बाहर है। धन्य है आप जैसे त्यागी महात्माओं को जो ऐसे काम में दत्तचित्त रहते हैं।

आपके दर्शनों की बहुत कुछ उत्कंठा रहा करती है और आशा है कि फिर कभी न कभी आपके दर्शनों का आनन्द प्राप्त होगा।

आपका नम्र सेवक—

गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

I congratulate Muni Shri Jayant Vijayji Maharaj for his book on Abu and heartily endorse all the remarks of the famous Archaeologist and Historian of Rajput States, Rai Bahadur Mahamahopadhyay Pandit Gaurishanker Ojha who has spent much time in carefully studying and deciphering the old and ancient archaeological places

round about Mount Abu. By writing this book in a simple and readable form Muni Shri Jaiyant Vijayji Maharaj has indeed done a great service not only to the cause of Jainism and Hinduism, but to all the world tourists who visit the ancient and historical religious places of great antiquity on Mount Abu with which it abounds. The book gives in lucid style full and interesting details of everything worth seeing there and would serve as the "best guide of Mount Abu" in existence, and the importance of the book is enhanced by th several illustrations of beautiful places and scenery of this charming place. The illustrations are carefully selected and show at best the exquisite architectural beauties of many of the historic buildings. The Hindi style is very simple and an ordinary reader can profit by it; besides, there is at present no "illustrated Abu Guide" in existence either in English or Hindi.

Khem Chand Singhi,
M. A.
Late Revenue Commissioner, Sirohi State.
and
Late Superintendent,
Land Revenue Department,
Jodhpur State.

SIROHI,
27 August 1933

जगत्पूज्य-स्वर्गस्थ-गुरुदेव

श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी

महाराज को अर्घ्य

धर्मो विश्ववरेण्यसेवितपदो
धर्मं भजे भावतः,
धर्मेणा वधुतः कुबोधनिचयो
धर्माय मे स्यान्नतिः ।
धर्माच्चिन्तित कार्यपूर्ति रखिला
धर्मस्य तेजो महत्,
धर्मे शासनरागधैर्यसुगुणाः
श्रीधर्म ! धर्मं दिश ॥ १ ॥

(अनेकान्ती).

आबू

जगत्पूज्य-शास्त्रविशारद-जैनाचार्य्य—



श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज

१९२५	दीक्षा सवत् १९४४
सवत १९६५	स्वर्गगमन सवत् १९७८

प्रकाशक का निवेदन

भारतवर्ष का शृंगार और राजपूताने का शिर छत्र, जगद्विख्यात 'आबू' पर्वत यह इस ग्रंथ का विषय है। तो फिर हमें 'आबू' के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। इधर ग्रंथकार ने अपने 'किञ्चिद्वक्तव्य' में तथा 'उपोद्घात' के लेखक मुनिराज श्री विद्याविजयजी ने भी 'आबू' की प्रसिद्धि के कारण और आबू-देलवाड़ा के मंदिरों के निर्माता पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम इस ग्रंथ के संबन्ध में इतना तो अवश्य कहेंगे कि— आबू' जैसे जगत प्रसिद्ध पर्वत के संबन्ध में ग्रन्थकार मुनिराज श्री ने अधिकार पूर्ण लेखिनी से सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रन्थ निर्माण किया है और इसके प्रकाशित कराने का प्रसङ्ग हमें प्राप्त हुआ, इसके लिये हम अपना अहोभाग्य समझते हैं।

मुनिराज श्री जयन्त विजयजी ने इस ग्रन्थ की योजना केवल अन्यान्य ग्रंथों अथवा अन्यान्य साधनों पर से नहीं की, किन्तु 'आबू' में दो बार पधार कर सारे स्थानों को

स्वयं देखकर पूर्ण अनुभव प्राप्त करके की है। इतिहासिक बातें भी केवल किंवदन्तियों पर से नहीं परन्तु शास्त्रों के प्रमाणों से दी है। इस प्रकार अनेक परिश्रम पूर्वक जिसकी योजना की गई हो। उसकी सत्यता, और प्रामाणिकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। ग्रन्थ की श्रेष्ठता का क्या वर्णन करें, 'हाथ कंगन को आरसी' की जरूरत नहीं रहती। ग्रन्थ पढ़ने वाले स्वयं देख सकते हैं कि—ग्रंथकार ने कितना परिश्रम किया है।

यह ग्रंथ प्रथम मुनिराज श्री जयन्तविजयजी ने गुजराती भाषा में तैयार किया था, और जिसको भावनगर की 'श्री यशोविजय ग्रंथमाला' ने प्रकाशित किया था। कुछ ही समय में उसकी प्रथमावृत्ति समाप्त हो गई, उसकी दूसरी आवृत्ति भी लगभग प्रकाशित होने की तैयारी में है। यह भी इस पुस्तक की लोकमान्यता, श्रेष्ठता का एक प्रमाण ही है।

अब हम ग्रंथकार' के विषय में दो शब्द कहना चाहते हैं।

पाठकों को स्मरण में होगा कि 'आबू-देलवाड़े के जिन पवित्र मंदिरों का वर्णन इस ग्रन्थ में दिया गया है,

उन्हीं पवित्र मंदिरों में यूरोपियन लोग बूट पहन कर जाते थे। इस भयंकर आशातना को, आज से करीब १६-२० वर्ष पूर्व एक महान् पुरुष ने विलायत तक प्रयत्न करके, दूर करवाया था। वे जैन धर्मोद्धारक, नवयुग प्रवर्त्तक, शास्त्र विशारद जैनाचार्य्य श्री विजयधर्मसूरि हैं। 'आबू' ग्रन्थ के निर्माता इन्हीं पूज्यपाद आचार्य्य देव के विद्वान् और प्रसिद्ध शिष्यों में से एक हैं।

मुनिराज श्रीजयन्त विजयजी ने 'शान्त मूर्त्ति' के नाम से खूब ख्याति प्राप्त की है। सचमुच ही आप शान्ति के सागर है। आपकी शान्तवृत्ति का प्रभाव कैसे भी मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रहता। ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने में आप रात दिन तल्लीन रहते हैं। क्लेशादि प्रसंगों से आप कोसों दूर रहते हैं। हमें भी आपके दर्शन का लाभ लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आपने काशी की श्री जैन पाठशाला में गुरुदेव श्री विजयधर्मसूरि महाराज की छत्रछाया में वर्षों तक रह कर संस्कृत प्राकृत का खूब अभ्यास किया था। आपने अपने पूर्वाश्रम में अनेक संस्थाओं के चलाने का कार्य बड़ी दक्षता के साथ किया था और गुरु के साथ बंगाल, मध्य हिन्दुस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि देशों में खूब

भ्रमण भी किया, इससे आप में अनुभव ज्ञान भी अपार है।

आपकी प्रवृत्ति प्रति समय ज्ञान, ध्यान और लेखनादि क्रियाओं में ही रहती है। आपकी कलम ठंडी, परन्तु वज्र लेप समान होती है। आप जो कुछ लिखते हैं। प्रमाण-पुरःसर और अनेक खोजों के साथ लिखते हैं। आपका विहार वर्णन, कमल संयमी, टीका युक्त उत्तराध्ययन सूत्र, सिद्धान्त रत्निका की टीप्पणी, श्रीहेमचन्द्राचार्य्य के त्रिषष्ठिशला का पुरुष चरित्र के दसों पर्वों की सुक्तियों का संग्रह आदि आपके लिखे हुए ग्रन्थ हैं।

इन कार्यों से स्पष्ट है कि—मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी न केवल पवित्र चारित्र पालक साधु ही हैं, किन्तु विद्वान् भी हैं। आपने अपने ज्ञान का लाभ देकर कितने ही गृहस्थ बालकों को विद्वान् भी बनाया है।

जिस समय मुनिराज श्रीजयन्तविजयजी सिरोही पधारे थे, उस समय आपके इस ग्रन्थ के प्रकाशन के सम्बन्ध में बातचीत हुई और यह निर्णय हुआ कि—'आबू' की यह हिन्दी आवृत्ति हमारी पेढी की तरफ से प्रकाशित की जाय। उस समय के निश्चयानुसार आज हम यह ग्रन्थ

जनता के कर कमलों में रखने को भाग्यशाली हुए हैं। एतदर्थ हम ग्रन्थकार मुनिराज श्री के आभारी है।

हमारी इच्छानुसार इस ग्रंथ को चैत्री ओलीजी के पहले प्रकाशित कर देने में दि डायमंड जुबिली प्रेस, अजमेर ने जो योग दिया है, इसके लिये हम उसके भी आभारी है।

सिरोही,
फाल्गुन शुक्ल १४
वीर स २४५६, वि म १९८६

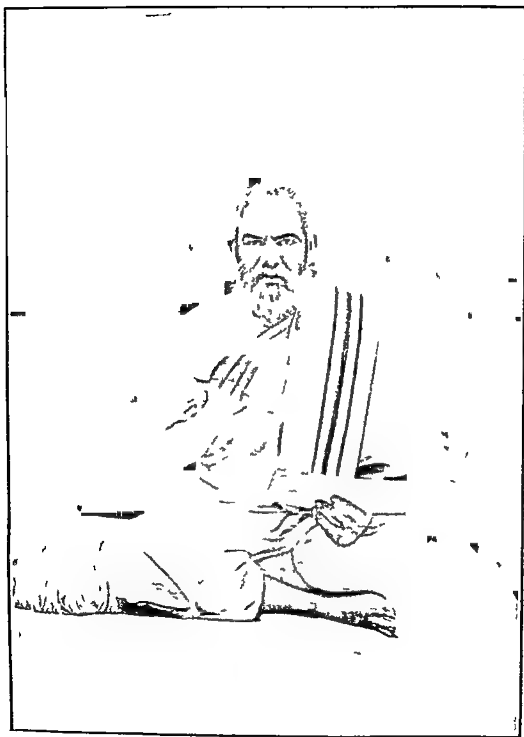
निवेदक—
मैनेजिंग कमेटी—
सेठ कल्याणजी परमानन्दजी



* जगत्पूज्य, श्री विजयधर्मसूरिभ्यो नमः *

किञ्चिद् वक्तव्य

'आबू' और 'आबू-देलवाड़े' के जैन मन्दिरों की संसार में कितनी ख्याति है? यह किसी से अज्ञात नहीं है। बहुत से यूरोपियन और भारतीय विद्वानों ने उस पर बहुत लिखा है, कुछ गाईड कुछ फोटो के एल्बम भी प्रकाशित हुए हैं। परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो 'आबू' पर की एक-एक वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान दे सके, मन्दिरों में भी कहां क्या है? उसका इतिहास बता सके ऐसी एक भी पुस्तक किसी भी भाषा में नहीं है। अतएव प्रसंगोपात आज से करीब छः वर्ष पहले मुझे 'आबू' पर जाने का प्रसंग प्राप्त हुआ था और वहां कुछ स्थिरता भी हुई। इसका लाभ लेकर आबू सम्बन्धी कुछ बातें मैंने लिखीं। जहां तहां खोज करके संग्रह करने योग्य बातों का संग्रह किया। थोड़े समय में मेरे पास अच्छा संग्रह हो गया। प्रथम तो मैंने उसको लेखों के ढंग पर लिखना प्रारम्भ किया परन्तु मित्रों और साहित्य प्रेमियों के अनुरोध ने मुझे 'आबू'



'आबू' के लेखक—शान्त मूर्त्ति मुनिराज श्री जयंत विजयजी महाराज

D J Press, Ajmer

सम्बन्धी एक पुस्तक तय्यार करने के लिये बाध्य किया। जो पुस्तक आज से तीन वर्ष पहले 'आबू' के नाम से गुजराती में प्रकाशित की गई थी।

थोड़े ही समय में 'आबू' की प्रथमावृत्ति बिक गई और प्रथमावृत्ति के मेरे 'किञ्चिद्वक्तव्य' में जैसा कि मैंने कहा था, 'दूसरा भाग' तय्यार करूं, उसके पहले ही प्रथम भाग की 'दूसरी आवृत्ति' अनेक संशोधनों के साथ निकालने की आवश्यकता खड़ी हुई। यह सचमुच मेरे आनन्द का विषय हुआ और मेरे परिश्रम की इतने अंशों में मिलने वाली सफलता के लिये मैंने अपने को भाग्यशाली समझा।

जिस समय 'आबू' सम्बन्धी मेरे लेख 'धर्मध्वज' में प्रकाशित होने लगे; उस समय प्रथमावृत्ति के 'वक्तव्य' में जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूँ, "किसी ने इस पुस्तक में मन्दिर की सुन्दर कारीगरी के फोटू देने की, किसी ने विमल मंत्री, वस्तुपाल तेजपाल आदि के फोटू देने की; किसी ने मन्दिरों के सान और बाहर के दृश्यों के फोटू देने की; किसी ने देलवाडा और सारे 'आबू' पहाड़ का नकशा देने की; किसी ने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी

ऐसे तीनों भाषाओं में इस पुस्तक को छपावाने की और किसी ने 'आबू' सम्बन्धी रास, स्तोत्र, कल्प स्तुति, स्तवनादि (प्रकाशित और अप्रकाशित-सब) को एक स्वतन्त्र 'परिशिष्ट' में देने की—" ऐसी अनेक प्रकार की सूचनाएँ बहुत से आकांक्षिओं की तरफ से हुईं, और ये सूचनाएँ उपयोगी होने से उसका अमल 'दूसरे भाग' में करने का विचार मैंने रक्खा था. परन्तु 'दूसरा भाग' (गुजराती) शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से तय्यार करने का विचार होने से, तथा उस वक्त तय्यार करने में कुछ विलम्ब देख कर उपर्युक्त सूचनाओं में से कुछ सूचनाओं का यथा साध्य उपयोग मैंने गुजराती की दूसरी आवृत्ति में कर लिया है।

प्रथमावृत्ति की अपेक्षा गुजराती की दूसरी आवृत्ति में बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ है, उसी के अनुसार यह अनुवाद हिन्दी की प्रथम आवृत्ति-प्रकाशित की गई है।

गुजराती की प्रथमावृत्ति की अपेक्षा दूसरी आवृत्ति, में जिसका यह अनुवाद है, आशातीत परिवर्त्तन और परिवर्द्धन करने का प्रसंग, सं० १९८६ की मेरी 'आबू' की दूसरी यात्रा के प्रसंग से प्राप्त हुआ। इस दूसरी यात्रा से मैं दो मास 'आबू' पर रहा और गुजराती की प्रथमावृत्ति की एक एक बात को मिलान बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया।

इस प्रसंग पर मैं एक खास बात का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं।

'आबू' के मंदिरों में खास करके 'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' नामक विश्व विख्यात मंदिर है, देखने की खास चीज उनकी कारीगरी-कोतरणी और खुदाई का काम है। यह कारीगरी, भारतीय शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने हैं। जिसके पीछे करोडों रुपये इन मंदिरों के निर्माताओं ने व्यय किये है। शिल्प के ज्ञाता किंवा शिल्प से अभिरुचि रखने वाले शिल्पकला की दृष्टि से इसका निरीक्षण करें, परन्तु इस शिल्प के नमूनों (कारीगरी) में से हम और भी बहुतसी बातों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—उस समय का वेष, उस समय के रीत-रिवाज, उस समय का व्यवहार आदि। देखिये—

१—'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' के खुदाई में जैन साधुओं की मूर्तिएँ। क्या उस पर से हमें यह पता नहीं चलता है कि आज से सातसौ वर्ष के पहले भी जैन साधुओं का वेष लगभग इस समय के साधुओं के जैसा ही था। देखिये मुँहपत्ति हाथ में ही है, न कि मुख पर बंधी हुई। दंडे भी उस समय के साधु अवश्य रखते थे। हां, आधुनिक

रिवांज के अनुसार, उन दंडों के ऊपर मोघरा नहीं बनाया जाता था।

२—कोतरणी में क्या देखा जाता है? चैत्यवंदन, गुरुवंदन, पैर दबाना (भक्ति करना), साष्टांग नमस्कार, व्याख्यान के समय ठवणी का रखना, गुरु का शिष्य के सिर पर वासक्षेप डालना आदि अनुष्ठान क्रियाएँ कैसी दिखती हैं? क्या उस समय की और इस समय की क्रियाओं की तुलना करने का यह साधन नहीं है?

३—उसी नक़्शी में राज-सभाएँ, जुलूस (प्रोसेशन) सवारियां, नाटक, ग्राम्य जीवन, पशु पालन, व्यापार, युद्ध आदि के दृश्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। ये वस्तुएँ उस समय के व्यवहारों का ज्ञान कराने में बहुत उपयोगी हो सकती हैं।

४—इसी प्रकार जैन मूर्त्ति शास्त्र किंवा जैन शिल्प शास्त्र का अभ्यास करने किंवा अनुभव प्राप्त करने का भी यहां अपूर्व साधन है। किन्हीं किन्हीं मूर्त्तिओं अथवा परिकरों को देख करके तो बहुत ही आश्चर्य उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ—भीमाशाह के मंदिर में मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान् की

धातुमयी सुन्दर नक्शी वाली पंचतीर्थी के परिकर युक्त जो मूर्त्ति है, वह करीब ८ फुट ऊँची और साढे पांच फुट चौड़ी है। इतनी बड़ी धातु की पंचतीर्थी अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आई। शायद ऐसी मूर्त्ति अन्यत्र होगी भी नहीं।

५—इसी मंदिर के गूढमंडप में तथा विमलवसहि में मूलनायक की संगमरमर की बहुत बडी मूर्त्ति श्री ऋषभदेव भगवान् की है। उसके परिकर में, अत्यन्त मनोहर, परिकर में देने योग्य, सभी वस्तुएँ बनी हुई हैं। परिकर बहुत बड़ा होने से उसकी प्रत्येक चीज का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न आकृति वा काउस्सग्गिये, भिन्न भिन्न प्रकार की रचना वाले चौबीसी के पट्ट, जुदी जुदी जात के आसन वाली बैठी और खड़ी आचार्य्य तथा श्रावक श्राविकाओं की मूर्त्तिएँ, तथा प्राचीन व अर्वाचीन पद्धति के परिकर आदि बहुत कुछ हैं, जिनसे कि-जैन मूर्त्ति शास्त्र के विषय में अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हां! कहीं २ कोई २ काम देखकर हम लोगों को अनेक प्रकार की शंकाएँ भी हो उठती हैं। जैसे—

'विमलवसहि' और 'लूणवसहि' के खंभों की नक्शी में, भिन्न भिन्न आकृतिओं की भिन्न भिन्न क्रियाएँ करती हुई, हाव-भाव विभ्रम और काम की अनेक चेष्टाएँ युक्त पुतलियों की बहुलता नजर आती है।

ऐसी विचित्र आकृतिओं को देखते हुए बहुत लोगों को शंका होती है और होना स्वाभाविक भी है-कि जैन मंदिर में यह क्या? ऐसी कामोत्तेजक पुतलियाँ क्यों होनी चाहिए।

मेरे खयाल में तो यही आता है कि—कारीगरों ने अपनी शिल्पकला को दिखाने के लिए ऐसी पुतलिएँ बनाई हैं। इसका धर्म के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है। हिन्दुस्थान में उस समय ऐसी अवस्था की भी मनुष्या-कृत्तियाँ बनाने वाले कारीगर मौजूद थे, यह दिखलाने के उद्देश्य से ही कारीगरों ने अपनी शिल्पकला के नमूने कर दिखाये हैं। 'अखूट द्रव्य का व्यय करने वाले जब ऐसे धनाढ्य मिलें तो फिर वे भी क्यों नाना प्रकार के नमूनों से अपनी शिल्प विद्या दिखाने में न्यूनता रखे, बस इस बात को लक्ष्य में रख कर उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार उन आकृत्तियों को बनाया होगा। वर्त्तमान में भी किसी जैन व हिन्दु मन्दिर जो कि मुसलमान कारीगरों के हाथ

से बनते हैं, उसमें मुसलमान संस्कृति के नमूने बना दिये जाते हैं और वे अनभिज्ञता में निभा लिये जाते हैं। इसी प्रकार उस समय भी हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

परन्तु साथ ही साथ इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि उन कारीगरों ने वे नियम जैसा मन में आया वैसे नहीं खोद मारा है। प्रत्येक आकृत्ति 'नाट्य-शास्त्र' के नियम से बनी है। 'नाट्य-शास्त्र' में 'नाट्य' के आठ अङ्ग अथवा आठ प्रकार दिखलाये हैं। उनमें से किसी स्थान में प्रथम अङ्ग के अनुसार किसी स्थान में दूसरे अङ्ग के नियमानुसार तथा किसी स्थान में ३, ४, ५, ६, ७ किंवा ८ वें अङ्ग के अनुसार व्यवस्थित रीति से पुतलियाँ बनी हैं। 'नाट्य-शास्त्र' का अभ्यासी अपने अभ्यस्त ग्रन्थों में से यदि इसका मिलान करेगा, तो अवश्य उसको उपर्युक्त कथन का निश्चय होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि—आबू के जैन मन्दिर, एक तीर्थ रूप होकर मुक्ति को प्राप्त कराने में साधनभूत तो हो ही सकते हैं, परन्तु साथ ही साथ भूतकाल का इतिहास, रीति रिवाज, व्यवहारिक ज्ञान, शिल्प शास्त्र एवं नाट्य-शास्त्र

आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने वाली एक खासी कॉलेज किंवा विश्व-विद्यालय है।

एक अन्य बात का उल्लेख भी आवश्यकीय है कि देलवाड़ा के इन मन्दिरों के एक दो स्थान में स्त्री अथवा पुरुष की नितान्त नग्न मूर्त्तिएँ भी खुदी हुई दिखाई देती हैं। ऐसी मूर्त्तियों को देखते हुए कुछ लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि—बौद्ध, शाक्त, कौल और वाममार्गी मतों की तरह, जैन मत में किसी समय तान्त्रिक विद्या का प्रचार होगा।

परन्तु यह कल्पना नितान्त अयुक्त है, हमने इस विषय पर दीर्घकाल तक परामर्श किया, जांच की, परिणाम में कुछ शिल्प-शास्त्र के अच्छे अनुभवियों से ऐसा मालूम हुआ कि—शिल्प-शास्त्र का ऐसा नियम है कि—"ऐसे बड़े मन्दिरों में एकाद नग्न मूर्त्ति अवश्य बना दी जाती है। ऐसा करने से उस मन्दिर पर बिजली नहीं गिरती। इसी कारण से मन्दिर निर्माता की दृष्टि को चुरा करके भी कारीगर लोग एकाद ऐसी नग्न पुतली बना देते हैं"।

शिल्प-शास्त्र का ऐसा नियम हो चाहे न हो, अथवा ऐसा करने से बिजली से बचाव होता हो या न हो।

परन्तु यह बात सम्भवित है कि परम्परा से ऐसी श्रद्धा अवश्य चली आती होगी।

दूसरी कल्पना यह भी हो सकती है कि कोई दृष्टि विकारी मनुष्य मंदिर में जाय तो उसके दृष्टि दोष से मंदिर को नुकसान हो, इस प्रकार का वेहम प्रचलित है। इस वेहम को टालने के लिये एकाद नग्न मूर्त्ति मंदिर में किसी स्थान पर बना देते हैं अर्थात् परधर्म: असहिष्णु, ईर्ष्यालु मनुष्य मंदिर को देखकर ईर्ष्या से मंदिर पर तीव्र दृष्टि डाले जिससे मंदिर को नुकसान होने की संभावना रहती है इस कारण उस नग्न मूर्त्ति को देखते ही, ईर्ष्या जन्यकर दृष्टि बदल जाय और वह मनुष्य अन्य सब विचारों को छोड़, उसको देखने में एकाग्र बन जाय। परिणाम में ऐसा भी कुछ कारण हो कि उसकी क्रूर भावनायुक्त दृष्टि का असर मंदिर पर न रहे।

इस प्रकार 'आबू' के जैन मंदिर अनेक दृष्टि से देखे जा सकते हैं और उन दृष्टिओं से देखने वाले अवश्य लाभ उठा सकते हैं।

अब मैं अपने इस वक्तव्य को पूरा करूं, इसके पहिले एक दो और बातें स्पष्ट कर लेना उचित समझता हूं।

पहली बात तो यह है कि—'आबू' यह प्राचीन और सर्वमान्य तीर्थ है और इससे खास 'आबू' में तथा उसके आसपास इतनी ऐतिहासिक सामग्री है कि-जिस पर जितना लिखा जाय, उतना कम है। गुरुदेव की कृपा से मुझे दो दफे 'आबू की' स्पर्शना करने का प्रसंग प्राप्त हुआ। उसमें मुझसे जितना हो सका उतना संग्रह कर लिया। संग्रह पर से मैंने 'आबू' सम्बन्धी निम्न लिखित भाग तय्यार करने की योजना की है।

१ 'आबू' भाग १ (यह ग्रन्थ)।

२ 'आबू' भाग २ ('आबू' भाग १ में जो २ ऐतिहासिक नाम आए हैं उनका विस्तृत वर्णन है)।

३ 'आबू' भा० ३ ('अर्बुद प्राचीन जैन लेख संग्रह')।

४ 'आबू' भा० ४ ('अर्बुद स्तोत्र-स्तवन संग्रह')।

इन चारों भागों में प्रथम भाग तो प्रकाशित हो ही चुका है। दूसरा, तीसरा और चौथा भाग भी लगभग तय्यार हुआ है।

इनके अतिरिक्त 'आबू' के नीचे से सारे पहाड़ की प्रदक्षिणा करते हुए बहुत से गांवों में से प्राचीन लेखों का अच्छा संग्रह उपलब्ध हुआ है तथा ऐतिहासिक गांवों का

जैन दृष्टि से वृत्तान्त लिखने के लिये भी साधन एकत्रित हुए हैं। जिनमें कुम्भारियाजी, जीरावलाजी और बामण-वाड़जी आदि तीर्थों का भी समावेश होता है।

इस सारे संग्रह को 'आबू' भाग ५ और 'आबू भाग' ६ के नाम से प्रसिद्ध करने का विचार रक्खा गया है।

ये भाग प्रकाशित हों, इसके दरमियान 'आबू' भाग १ का अंग्रेजी अनुवाद एक बी. ए., एल एल. बी, विद्वान् जैन गृहस्थ कर रहे हैं।

दूसरी बात लिखते हुए मुझे बहुत आनन्द होता है कि–देलवाड़ा (आबू) के जैन मन्दिरों की व्यवस्थापक कमेटी–सेठ कल्याणजी परमानन्दजी के व्यवस्थापक जो कि–सिरोही संघ के मुखिया है वे 'आबू' की हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित कर रहे है।

'आबू' तीर्थ की व्यवस्थापक कमेटी को, उनके इस उदार कार्य के लिये जितना धन्यवाद दिया जाय उतना कम है। सेठ कल्याणजी परमानन्दजी की पेढी का यह कार्य अत्यन्त स्तुत्य और अन्य तीर्थों की व्यवस्थापक कमेटियों के लिये अनुकरणीय है।

अन्त में—जगत्पूज्य परमगुरु स्व० श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी की असीम कृपा और उनके परोक्ष आशीर्वाद के अवलम्बन से ही, मैंने 'आबू' सम्बन्धी उपर्युक्त योजनानुसार पुस्तकें तय्यार करना प्रारम्भ किया है। गुरुदेव मुझे मेरे कार्य में, मेरी और जनता की इच्छानुसार सफलता प्राप्त कराने का सामर्थ्य दें, यही अन्तःकरण से प्रार्थना करता हुआ मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूं।

जयन्त विजय

सिद्धक्षेत्र—पालीताना,
फाल्गुन सुदि १, वीर सं० २४५६
धर्म सं० ११

जगद्वंद्य श्री विजय धर्म सूरि गुरुदेवेभ्यो नमः ।

उपोद्‌घात

परम-स्नेही, आत्म-बन्धु, शान्तमूर्त्ति मुनिराज श्री जयन्तविजयजी ने मेरे पास सूचना भेजी कि 'आबू' गुजराती की दूसरी आवृत्ति के लिये और हिन्दी की प्रथमावृत्ति के लिये 'उपोद्घात' स्वरूप कुछ पंक्तियाँ मुझे लिखना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आया और अब भी नहीं आया कि –मैं क्या लिखूं? 'आबू' पुस्तक को देखने वाला कोई बता सकता है कि–'आबू' के लेखक मुनिराज श्री ने किस बात की न्यूनता रक्खी है जिसकी पूर्त्ति मैं अपनी पंक्तियों में करूं? हां, एक बात अवश्य है मुनिराज श्री जयन्तविजयजी के व्यक्तित्व को और उनके इस अत्यन्त परिश्रम-जनित ऐतिहासिक खोज से भरपूर इस ग्रन्थ को देख कर एक बात तो अवश्य कहने का दिल हो जाता है और वह यह है:–

आज संसार में ऐसे अनेक मनुष्य पाये जाते हैं, जिनमें कर्मण्यता की बू तक नहीं होने पर भी वे अपने को 'कर्मवीर' बताते हैं और वे बड़ी बड़ी उपाधियों को लेकर फिरने में ही अपना गौरव समझते हैं। जरा आगे बढ़ कर कहा जाय तो—कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने आप बड़े बड़े टाइटिल-धारी दिखाने में ही रात दिन प्रयत्न शील रहते हैं। उन्हें सविनय पूछा जाय कि आप जिस विषय का टाइटिल लिये बैठे हैं और जिसको प्रगट में लाने के लिये स्वयं प्रेसों में दौड़ धूप करते हैं, वह कब, कहां और किसने दिया? क्या उस विषय का कोई ग्रन्थ या लेख भी आपने लिखा है? अथवा ऐसा ही कुछ कार्य भी किया है? जवाब में उनके क्रोध के पात्र बनने के और कुछ नहीं मिलता।

जब समूह में एक और ऐसे ही ले भग्गू मनुष्यों की भरमार पाई जाती है, जब कि दूसरी ओर ऐसे भी सज्जन महानुभाव व सच्चे विद्वान् पाये जाते हैं, जो कि अपने विषय के अद्वितीय विद्वान् अनेक खोजों के प्रकट कर्त्ता और ग्रन्थों के निर्माता होने पर भी उनके नाम के साथ एक मामूली विशेषण भी कोई लगाता है तो उनकी आँखें

शरम से नीचे ढल जाती हैं। स्वयं कोई टाइटिल लिखने लिखवाने की तो बात ही क्या करना।

ऐसे सच्चे संशोधक, पुरातत्त्व के खोजी, इतिहास के ज्ञाता होने पर भी 'सरलता' और 'नम्रता' के गुणों से विभूषित जो कुछ विद्वान् देखे जाते हैं, उनमें शान्त-मूर्त्ति मुनिराज श्री जयन्त विजयजी भी एक हैं।

मुनिराज श्री जयन्त विजयजी ने 'आबू' पुस्तक में कितना परिश्रम किया है, कितनी खोज की है, इसको दिखलाने के लिये 'हाथ कंघन को आयने, की जरूरत नहीं है'। आपने इस पुस्तक के निर्माण करने में सिर्फ यात्रालुओं का खयाल नहीं रक्खा। 'यहां से वहां जाना' 'वहां से वहां जाना', 'यहां से यह देखना', 'वहां से यह देखना', 'यहां से मोटर में इतना किराया देकर बैठना' और 'वहां जाकर उतर जाना', 'धर्म-शाला के मैनेजर से ओढ़ने बिछाने व रसोई के लिये साधन मिल जायगा' बस यात्रालुओं के लिये इतनी ही वस्तुएँ पर्याप्त हैं। ग्रन्थ निर्माता मुनिराज श्री का लक्ष्य बहुत बड़ा है। उन्होंने प्रत्येक मन्दिर के निर्माता का परिचय, बल्कि उनके पूर्वजों का भी संक्षिप्त इतिहास दिया है। किस २ समय में उसका जीर्णोद्धार हुआ? उसमें क्या क्या

परिवर्त्तन हुआ? प्रत्येक मन्दिर व देहरियों में क्या क्या दर्शनीय चीजें हैं? उनमें जो जो भाव चित्रकारी के हैं, उनकी मूल वस्तुओं का सूक्ष्मता से निरीक्षण करके उनको भी सम्पूर्ण विवेचन के साथ दिया है, प्रत्येक मन्दिर व देहरी में कितनी कितनी मूर्त्तियाँ हैं अथवा और भी जो जो चीजें हैं, उनका सारा वृत्तान्त देने के अतिरिक्त आवश्यकीय शिला लेखों से उस बात पर और भी प्रकाश डालते हैं। न केवल जैन मन्दिरों ही के लिये 'आबू' के ऊपर यावत् जितने भी हिन्दु व अन्य धर्मावलम्बियों के जो जो दर्शनीय स्थान हैं, उन सारे स्थानों का वर्णन उन उन धर्मों के मन्तव्यानुसार मय तद्विषयक इतिहास एवं कथाओं के दिया है।

प्रसंगोपात आबू से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन राजाओं व मन्त्रियों का इतिहास भी यद्यपि संक्षेप में, परन्तु खोज के साथ दिया है।

इस प्रकार आबू के सच्चे इतिहास को प्रकट करने वाला वर्त्तमान स्थिति की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज को दिखाने वाला, सर्वोपयोगी, सर्वमान्य, सर्व व्यापक एक ग्रन्थ का निर्माण एक जैन मुनिराज के हाथ से हो, यह भी एक गौरव की ही बात है और इसके

लिये मुनिराज श्री जयन्त विजयजी सचमुच धन्यवाद के पात्र हैं।

'आबू' यह तो हिन्दुस्थान के ही नहीं, सारे संसार के दर्शनीय स्थानों में से एक है और भारतवर्ष का तो शृङ्गार है, सिरमौर है। आबू ने संसार के इतिहास में अपना नाम सुवर्ण अक्षरों से लिखवाया है। दुनिया के किसी भी देश का कोई भी मुसाफिर हिन्दुस्तान में आकरके आबू का अवलोकन किये बिना नहीं जा सकता। 'आबू' की स्पर्शना के सिवाय उसकी यात्रा अपूर्ण ही रहेगी। आज तक जितने भी यात्री भारत भ्रमण के लिये आए, उन्होंने आबू को देखा और शब्दों द्वारा मनुष्य जाति से जितना भी हो सकता है, प्रशंसा की।

'आबू' की प्रशंसा अनेक ग्रन्थों में पाई जाती है। कर्नल टॉड ने अपनी 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' में एवं मि० फर्गुसन ने 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन्स ऑफ इन्शेण्ट आर्किटेक्चर इन हिन्दुस्तान' में 'आबू' की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसी प्रकार भारतीय अनेक विद्वानों ने भी आबू को अपने पुस्तकों में बड़ा महत्त्व का स्थान दिया है। उदाहरणार्थ—प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने

अपने 'राजपूताने का इतिहास' व 'सिरोही राज्य का इतिहास' में आबू को गौरव युक्त स्थान दिया है।

इसमें कोई शक नहीं कि–'आबू' भारत के प्रसिद्ध पर्वतों में से एक है। बल्कि भारत के अति मनोहर और भारत की बहुत बड़ी सीमा में फैले हुए सुप्रसिद्ध 'अरवली' पहाड़ का सब से बड़ा हिस्सा ही आबू पर्वत है। यही नहीं, भारत के–खास करके गुजरात और राजपूताने के परमार राजाओं का आबू के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी आबू उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है, परन्तु आबू की इतनी प्रसिद्धि और यशस्विता में खास कारण तो और ही है, और वह है 'आबू–देलवाड़ा के जैन मंदिर'।

यह तो स्पष्ट और जग जाहिर बात है कि–आबू पर्वत पर जो देशी-विदेशी लोग जाते हैं बहुधा वे सब के सब आबू–देलवाड़े के जैन मन्दिरों को देखने ही के लिये जाते हैं। सुप्रसिद्ध चौलुक्य राजा भीमदेव के सेनाधिपति विमल मंत्री का बनवाया हुआ 'विमल वसहि', और महा मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल का बनवाया हुआ 'लूण-वसहि' ये दो ही मन्दिर आबू पहाड़ की विश्व विख्याति के कारण हैं। संसार की आश्चर्यकारी–दर्शनीय वस्तुओं में

आबू भी एक है। इस सौभाग्य का मुख्य कारण, जैन धर्म प्रभावक उपर्युक्त महामंत्रिओं के करोड़ों रुपयों के व्यय से बनवाये हुए उपर्युक्त दो मन्दिर ही हैं। इन मन्दिरों के शिल्प की वास्तविक तारीफ आज तक के किसी भी विद्वान् लेखक से नहीं हो पाई है।

कर्नल टॉड ने अपनी 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' नामक पुस्तक में 'विमल वसहि' के सम्बन्ध में लिखा है।

"हिन्दुस्तान भर में यह मन्दिर सर्वोत्तम है और ताज महल के सिवा कोई दूसरा स्थान इसकी समता नहीं कर सकता"[1]

वस्तुपाल के मंदिर के सम्बन्ध में शिल्पकला के प्रसिद्ध ज्ञाता मि० फर्ग्युसन ने 'पिक्चर्स इलस्ट्रेशन ऑफ इन्शेण्ट आर्कीटेक्चर इन हिन्दुस्थान' नामक पुस्तक में लिखा है।

"इस मंदिर में, जो संगमरमर का बना हुआ है, अत्यन्त परिश्रम सहन करने वाली हिन्दुओं की टांकी से फीते जैसी सूक्ष्मता के साथ ऐसी मनोहर

---

1 ताज महल भी इसकी समता नहीं कर सकता। देखो परिशिष्ट ५ में दिया हुआ रा० रा० रत्नगिरिराज भीमराय का अभिप्राय। लेखक

आकृतियाँ बनाई गई हैं, जिनकी नकल कागज पर बनाने में कितने ही समय तथा परिश्रम से भी मैं सफल नहीं हो सकता"।

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओझा ने अपने 'राजपूताने का इतिहास' (खंड १, पृ० १६३) में लिखा है।

"कारीगरी में उस मंदिर (विमलवसहि) की समता करने वाला दूसरा कोई मंदिर हिन्दुस्तान में नहीं है।"

यद्यपि यहां और भी कुछ जैन मंदिर दर्शनीय हैं, जैसे कि—महावीर स्वामी का मंदिर, भीमाशाह का पित्तलहर मंदिर, चौमुखजी का मंदिर जिसको 'खरतरवसहि' कहते हैं, और अचलगढ के पास 'ओरिया' नामक छोटा गांव है, वहां का महावीर स्वामी का मंदिर, तथा उसके पास ही 'अचलगढ' गांव में चौमुखजी का आदीश्वरजी, कुंथुनाथजी और शान्तिनाथजी का मंदिर है। ये सभी मंदिर कुछ न कुछ विशेषता रखते हैं, परन्तु 'आबू' की इतनी ख्याति का प्रधान कारण तो विमलवसहि और लूण-वसहि ये दो मंदिर ही हैं।

अत्यन्त खुशी की बात है कि—इन मंदिरों की कारीगरी के अद्भुत नमूने का परिचय कराने के लिये ग्रंथकार ने लगभग ७५ पचहत्तर फोटू इस पुस्तक में देने का प्रबन्ध करवाया है। आबू की कारीगरी के कुछ फोटू कतिपय पुस्तक याने, रेलवे गाईडों में तथा 'आबू गाईड' वगैरह में देखने में आते हैं, परन्तु इतनी बडी संख्या में और वह भी खास २ महत्त्व के फोटू सिवाय आज तक किसी भी पुस्तक में देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। इस पुस्तक के इस दृष्टि से भी इस पुस्तक का महत्व कई गुना बढ गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि—आबू के जैन मंदिरों के पीछे, जैन इतिहास का ही नहीं, बल्कि भारत वर्ष के इतिहास का बहुत बड़ा हिस्सा समाया हुआ है। आबू के उपर्युक्त प्रसिद्ध मंदिरों के निर्माता कोई सामान्य व्यक्तियाँ नहीं थीं। वे देश के प्रधान राज्य कर्त्ताओं के सेनाधिपति और मंत्री थे। उन्होंने उन राजाओं के राज्य शासन विधान में बहुत बडा हिस्सा लिया था। ग्रंथकार ने उन राजाओं, मंन्दिर निर्माता मंत्रियों और और सेनाधिपतियों का आवश्यकीय परन्तु संक्षिप्त परिचय दिया है। इसी प्रकार उन्हीं के किञ्चिद् वक्तव्य से

प्रगट होता है, कि इतिहासिक बातों का विस्तृत वर्णन आबू के दूसरे भाग में आवेगा। और इसी लिये उन इतिहासिक बातों पर यहां विशेष उल्लेख करना अनावश्यक समझता हूं। तथापि इतना तो कहना समुचित होगा कि—आबू के जैन मंदिरों के निर्माता से संबंध रखने वाले जो कुछ जैन ऐतिहासिक साधन उपलब्ध होते हैं उन में मुख्य ये भी हैं:—

१—तेजपाल के मंदिर के शिलालेख–दो बड़ी प्रशस्तियां (वि० सं० १२८७ का)।
२—'विमलवसहि' मंदिर के जीर्णोद्धार का शिलालेख (वि० सं० १३७८ का)।
३—द्व्याश्रय काव्य (कर्त्ता श्री हेमचंद्राचार्य्य)।
४—कुमारपाल प्रबन्ध (जिन मंडनोपाध्याय कृत)।
५—तीर्थ कल्पान्तर्गत अर्बुद कल्प (जिनप्रभसूरि कृत)।
६—प्रबन्ध चिन्तामणि (मेरुतुङ्गाचार्य्य कृत)।
७—चित्तौड़ किले का कुमारपाल का शिलालेख।
८—वसंतविलास (बालचंद्राचार्य्य कृत)
९—सुकृत संकीर्त्तन (अरिसिंह कृत)।
१०—वस्तुपाल चरित्र (जिन हर्षकृत)।
११—विमल प्रबन्ध (कवि लावण्यसमय कृत)।

१२—उपदेशतरङ्गिणी (रत्न मंदिरगणि कृत)।
१३—प्रबन्ध कोश (राजशेखर सूरिकृत)।
१४—हमीर मदमर्दन (जयसिंह सूरिकृत)।
१५—सुकृतकल्लोलिनी (पुंडरीक–उदयप्रभसूरि कृत)।
१६—विमलशाह के मंदिर का शिलालेख (वि० सं० १३५० का)।
१७—'विमलवसहि' की देहरी नं० १० का शिलालेख (वि० सं० १२०१ का)।
१८—तिलकमञ्जरी (धनपाल कविकृत)।

आदि २ कई ऐसे जैन ग्रन्थ व शिलालेख एवं रासादि हैं, जिनमें आबू और उस पर के जैन मंदिरों के निर्माण पर काफी प्रकाश डाला गया है।

इन मंदिरों के निर्माताओं में प्रधान तीन पुरुष हैं, जो भारतवर्षीय इतिहास की रंगभूमि पर प्रधान पात्रता को धारण किये हुए खड़े हैं। विमलशाह, वस्तुपाल और तेजपाल।

विमलशाह, यह अणहिलपुर पाटन का राजा भीमदेव (जो विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दि के उत्तर भाग में हुआ) का सेनापति था। विमल बड़ा वीर था। इसके-

विषय में 'विमल प्रबन्ध' और विमलवसहि की देहरी नं० १० के शिलालेख से बहुत बातें ज्ञात हो सकती हैं।

दूसरे हैं वस्तुपाल–तेजपाल, इसमें कोई शक नहीं कि–विमल की अपेक्षा वस्तुपाल तेजपाल इतिहास में विशेष प्रशंसा पात्र हुए हैं। इसका खास कारण भी है। ये दोनों भाई शूरवीर, कर्त्तव्य परायण, राज्य कार्य में बड़े दक्ष, प्रजावत्सल्य, पर-धर्म सहिष्णु, बड़े बुद्धिमान्, दानेश्वरी इत्यादि गुणों को धारण करने के साथ साथ बड़े भारी विद्वान् भी थे। एक कवि ने वस्तुपाल के समस्त गुणों की प्रशंसा करते हुए गाया है:—

"श्री वस्तुपाल! तव भालतले जिनाज्ञा,
वाणी मुखे, हृदि कृपा, करपल्लवे श्रीः।
देहे द्युतिर्विलसतीति रुषेव कीर्त्तिः,
पैतामहं सपदि धाम जगाम नाम ॥"

(उपदेशतरङ्गिणी)

अर्थात् हे वस्तुपाल! तुम्हारे भालतल में जिनाज्ञा, मुख में सरस्वती, हृदय में दया, हाथों में लक्ष्मी और शरीर में कान्ति विलास कर रही है। इसीलिये तुम्हारी कीर्त्ति ब्रह्माजी के स्थान में (ब्रह्मलोक में) मानो क्रोधित

होकर के चली गई। अर्थात् वस्तुपाल के अनेक गुणों से उसकी कीर्ति ब्रह्मलोक तक पहुंच गई।

सचमुच, वस्तुपाल पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों देवियाँ प्रसन्न थीं। उसके साथ दोनों भाईयों में उदारता का गुण भी असाधारण होने से उन्होंने दोनों शक्तियों का (सरस्वती और लक्ष्मी का) इस प्रकार सद्व्यय किया कि जिससे वे अमर ही हुए।

ये दोनों भाई दृढ श्रद्धालु जैन होने से, यद्यपि इन्होंने जैन मन्दिर और जैन धर्म की उन्नति के कार्यों में अरबों रुपयों का व्यय किया, परन्तु साथ ही साथ अन्यान्य सार्वजनिक व अन्य धर्मावलंबियों के कार्यों में भी अखूट धन व्यय किया है। इन्होंने १८,९६,००,००० शत्रुंजय में, १२,८०,००,००० गिरिनार में, १२,५३,००,००० इसी 'आबू' पर लूणवसहि में खर्च किये। इनके अतिरिक्त सवा लाख जिन बिंब, नव सौ चौरासी पौषधशालाएं कई समवसरण, कई ब्रह्मशालाएँ, कई दानशालाएँ, मठ, माहेश्वर मन्दिर जैन मन्दिर, तालाब, बावडियाँ, किले-आदि बनवाये। कई जीर्णोद्धार किये और कई पुस्तक-भंडार बनवाये। 'तीर्थकल्प' के कथनानुसार, इनके बड़े-बड़े कार्यों की जो कुछ नोंध मिल सकती है उस पर से इन महानुभावों ने ऐसे

बड़े पुण्य कार्यों में कोई तीन अरब, चौरासी लाख, अठारह हजार के करीब धन व्यय किया है। इनका इतना धन सचमुच हमें आश्चर्य सागर में डाल देता है।

वस्तुपाल के चरित्र से हमें यह भी पता चलता है कि–वे स्वयं अद्वितीय विद्वान् थे, जैसा कि–मैं पहले कह चुका हूं। उन्होंने (वस्तपाल ने) संस्कृत के जो ग्रंथ बनाये हैं, उनमें नरनारायणानन्द काव्य, आदीश्वर मनोरथमयं स्तोत्रम् और वस्तुपाल सूक्तमः ये तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। (ये तीनों ग्रन्थ 'गायकवाड ओरियेण्टल सिरीज' में प्रकाशित हुए हैं)।

इसी प्रकार स्वयं विद्वान् होकर विद्वानों की कदर भी वे बहुत करते थे। कई विद्वानों को हजारों नहीं, लाखों रुपये सत्कार में देने के प्रमाण मिलते हैं। इनके समकालीन व पीछे के कई जैन-अजैन विद्वानों ने इनकी विद्वत्ता, उदारता, और दान शीलता की प्रशंसा की है। इनके प्रशंसक विद्वानों में सोमेश्वर कवि, अरिसिंह कवि, हरिहर, मदन, दामोदर, अमरचन्द्र, हरिभद्रसूरि, जिनप्रभसूरि, यशोवीर मंत्री और माणिक्यचन्द्र आदि मुख्य हैं। उनकी बनाई हुई स्तुतियों के कुछ नमूने ये हैं :—

एक दिन सोमेश्वर कवि वस्तुपाल के मकान पर पहुंचे। वस्तुपाल ने आदर के साथ उत्तम आसन दिया। सोमेश्वर आसन पर नहीं बैठते हुए कहने लगेः—

"अन्नदानैः पयःपानैर्धर्मस्थानैश्च भूतलम्।
यशसा वस्तुपालेन रुद्धमाकाश मण्डलम्" ॥

इस प्रकार स्तुति करके कवि ने कहाः—'इसलिये स्थानाभाव से मैं नहीं बैठ सकता'।

वस्तुपाल ने प्रसन्न होकर नौ हजार रुपये इनाम में दिये। इसी सोमेश्वर ने अन्य स्थान पर भी कहा हैः—

"इच्छा सिद्धिमगुन्नते सुरगणे कल्पद्रुमैः स्थीयते,
पाताले पवमान भोजनजने कष्टं प्रणष्टो बलिः।
नीरागानगमन् मुनीन् सुरमयश्चिन्तामणिः क्वाप्यगात्,
तस्मादर्थिकदर्थनां विपहतां श्रीवस्तुपालः क्षितौ ॥

(उपदेश तरङ्गिणी)

एक कवि ने वस्तुपाल में सातों वारों की कल्पना इस प्रकार की हैः—

"सूरो रणेषु, चरणप्रणतेषु सोमः,
वक्रोऽतिवक्रचरितेषु, बुधोऽर्थ बोधे।

नीतौ गुरुः, कविजने कविराक्रियासु,
मन्दोऽपि च ग्रहमयो नहि वस्तुपालः ॥"
(उपदेश तरङ्गिणी)

श्रीजिनहर्षसूरि ने वस्तुपाल चरित्र में कहा हैः—

"न गिरौ न च मातङ्गे न कूर्मे नैव सूकरे ।
वस्तुपालस्य धीरस्य प्राणौ तिष्ठति मेदिनी" ॥

तेजपाल की प्रशंसा करते हुए कहा हैः—

"सूत्रे वृत्तिः कृता पूर्वं दुर्गसिंहेन धीमता ।
विसूत्रे तु कृता वृत्तिस्तेजःपालेन मन्त्रिणा" ॥

हरिहर कवि ने कहा :—

"धन्यः स वीरधवलः क्षितिकैटमारि-
र्यस्येदमद्भुतमहो महिमप्ररोहः ।
दीप्रोष्ण दीधिति सुधा किरण प्रवीणं
मन्त्रिद्वयं किल विलोचनतामुपैति" ॥

मदन कवि ने कहा हैः—

"पालने राज्य लक्ष्मीणां लालने च मनीषिणाम् ।
अस्तु श्रीवस्तुपालस्य निरालस्यरतिर्मतिः" ॥
(जिन हर्ष सूरिकृत वस्तुपाल चरित्र)

इस प्रकार वस्तुपाल, तेजपाल की दान वीरता, विद्वत्ता आदि गुणों की प्रशंसा कई जैन अजैन विद्वानों ने की है। वस्तुतः ऐसे महान् पुरुष प्रशंसा के पात्र ही हैं। क्योंकि इन्होंने न केवल जैन धर्म की ही सेवा की है बल्कि भारतवर्ष के समस्त धर्मों की भी सेवा की है। इन्होंने ऐसे २ कार्य करके भारतीय शिल्प की रक्षा कर भारत का मुख उज्ज्वल किया है। आबू पहाड़ की इतनी ख्याति का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं दो वीर भाईयों और विमलशाह को ही है।

यह आशा की जाती है कि मुनिराज श्री जयन्तविजयजी आबू के दूसरे भागों में इन महा पुरुषों के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश अवश्य डालेंगे क्योंकि–आपने आबू पर दीर्घकाल रहकर शिला लेखादि का बहुत ही संग्रह किया है।

'आबू' के सम्बन्ध में, जैसा कि मै पहले कह चुका हूं, यों तो बहुतसी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, कई लेख भी छपे हैं, परन्तु इतना सर्वाङ्ग पूर्ण ग्रंथ तो यह पहला ही है। ग्रन्थकार महोदय ने 'आबू' सम्बन्धी सर्वाङ्ग पूर्ण इतिहास तय्यार करने में कितना परिश्रम किया है, यह बात इस प्रथम भाग से और अब निकालने वाले ग्रन्थों की योजना से सहज ही में समझी जा सकती है।

अब मैं अपने इस वक्तव्य को पूरा करूं, इसके पहले एक दो और बातों का उल्लेख कर देना समुचित समझता हूं।

इस पुस्तक के पृष्ठ ५ से पता चलता है कि-मुनिराज श्री जयन्तविजयजी का यह कथन है कि भगवान् महावीर स्वामी अपनी छद्मस्थावस्था में (सर्वज्ञ होने के पहले) अर्बुद भूमि में विचरे थे। इतिहासज्ञों के लिये यह नवीन और विचारणीय बात है। अभी तक की शोध से यह स्पष्ट हो चुका है कि इस मरुभूमि में भगवान् महावीर स्वामी कभी भी नहीं पधारे। अब इस शिलालेख के आधार पर ग्रंथकार इस नवीन बात को प्रकट करते हैं। इसकी सत्यता पर विशेष परामर्श और शोध करने की आवश्यकता है।

दूसरी बात—ग्रंथकार ने स्वयं आबू पर स्थिरता करके एक कुशल फोटोग्राफर के द्वारा खास पसंदगी के अच्छे अच्छे फोटू लिवाये हैं, जो इस पुस्तक में दिये गये हैं। इन्हीं फोटूओं का एक सुन्दर आल्बम, चित्रों के थोड़े थोड़े परिचय के साथ पुस्तक प्रकाशक की तरफ से निकालने की योजना कराई जाय तो यह कार्य बहुत ही

आदरणीय होसकेगा। क्योंकि—आबू के फोटूओं का इतना संग्रह आज तक किसी ने नहीं किया।

हमें यह जानकर बड़ी खुशी उत्पन्न होती है कि—जिस प्रकार आबू पुस्तक की 'गुजराती' और 'हिन्दी' आवृत्तियाँ निकल रही हैं, उसी प्रकार इसका अंग्रेजी अनुवाद भी हो रहा है। उधर 'आबू' के शिलालेखों का एक भाग भी छप रहा है। ग्रंथकार के 'किञ्चिद् वक्तव्य' के अनुसार 'आबू' पहाड़ के नीचे के जिन-जिन गांवों और स्थानों से उन्होंने शिलालेखों का संग्रह किया है, उनका, तथा 'आबू' सम्बन्धी प्राचीन कल्प, स्तोत्र, स्तवन वगैरह का भी एक भाग निकलेगा। इस प्रकार ग्रन्थकर्त्ता 'आबू' सम्बन्धी छः भाग प्रकाशित करायेंगे। कितनी खुशी की बात है ? कितना प्रशंसनीय कार्य है ?

सचमुच मुनिराज श्री जयन्तविजयजी का यह एक भागीरथ प्रयत्न है। उनके इन भागों के निकलने से न केवल 'आबू' के ही विषय में, परन्तु अन्य भी अनेक ऐतिहासिक बातों पर बड़ा ही प्रकाश गिरेगा।

गुरुदेव, मुनिराज श्री जयन्तविजयजी की इस कामना को पूर्ण करें, यही अन्तःकरण से मैं चाहता हूं।

अन्त में—मुनिराज श्री के प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी कम है। उनका यह अद्भुत प्रयत्न है। इसमें न केवल जैन धर्म का, बल्कि सारे राष्ट्र का गौरव है। पुनः भी यही चाहता हुआ कि–गुरुदेव, ग्रंथकार उनके आगामी कार्यों को बहुत शीघ्र तय्यार और प्रकाशित कराने का सामर्थ्य अर्पण करें, मैं अपने वक्तव्य को यहां ही समाप्त करता हूं।

सरदारपुर छावनी, (ग्वालियर स्टेट)
फाल्गुन वदि ५ वीर सं० २४५६,
धर्म सं० ११ ता० १५–२–२३

विद्याविजय



विषय सूची

विषय सूची



चित्र-सूची



आबू

नत्वा तं श्रीजिनेन्द्राद्यं निष्कोषहतकर्मकम् ।
धर्मसूरिगुरुं मुख्यं स्मृत्वा जैनीं तथा गिरम् ॥१॥
वर्णनमर्बुदाद्रेर्हि जगन्नेत्रहिमद्युतेः ।
किञ्चिल्लिखामि नामूलं लोकोपकारहेतवे ॥ २ ॥
(युग्मम्)

केवल भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु यूरोप (Europe) अमेरिका (America) आदि पाश्चात्य देशों (Western countries) में भी आबू पर्वत ने अपनी अत्यन्त रमणीयता एवं देलवाडा के सुन्दर शिल्पकला युक्त जैन मन्दिरों के द्वारा इतनी ख्याति प्राप्त करली है कि उसका विस्तार-पूर्वक वर्णन करना अनावश्यकसा प्रतीत होता है। इसी कारण से विस्तार-पूर्वक न लिखते हुए संक्षेप में कहने का यही है कि आबू पर्वत-(१) देलवाडा और अचलगढ़ के जैन मन्दिर, (२) गुरुशिखर, (३) अचलेश्वर महादेव, (४) मन्दाकिनी कुण्ड, (५) भर्तृहरि की गुफा,

(६) गोपीचन्दजी की गुफा, (७) कोटेश्वर (कनखलेश्वर) महादेव, (८) श्रीमाता (कन्याकुमारी), (६) रसियावालम, (१०) नलगुफा, (११) पांडवगुफा, (१२) अर्बुदादेवी (अधर देवी), (१३) रघुनाथजी का मन्दिर (१४) रामझरोखा, (१५) रामकुण्ड, (१६) वशिष्ठाश्रम, (१७) गौमुखीगंगा, (१८) गौतमाश्रम (१६) माधवाश्रम, (२०) वास्थानजी, (२१) कोड़ीधज, (२२) ऋषीकेश, (२३) नखीतालाव, (२४) क्रेग पॉयण्ट (गुरु गुफा) आदि तीर्थों (जिनका वर्णन आगे 'हिन्दू तीर्थ और दर्शनीय स्थान' नामक अन्तिम प्रकरण में आवेगा) के कारण प्राचीन काल से ही जिस प्रकार जैन, शैव, शाक्त, वैष्णवादि के लिये पवित्र एवं तीर्थ स्वरूप है, वैसे ही अपनी सुन्दरता एवं स्वास्थ्य [illegible] के कारण राजा-महाराजा और यूरोपियनों में भी सुविख्यात है। भोगी पुरुषों के वास्ते वह भोग-स्थान और योगी पुरुषों के वास्ते योगसाधना का एक अपूर्व धाम है। वह नाना प्रकार की जड़ी बूंटी व औषधियों का भण्डार है। बाग बगीचे, प्राकृतिक झाड़ियाँ, जंगल, नदी, नाले और झरणादि से अत्यन्त सुशोभित है। जहां थोड़ी २ दूर पर आम-करौंदा आदि नाना प्रकार के फलों के वृक्ष तथा चम्पा, मोगरादि

पुष्पों की झाड़ियां आगन्तुकों के हृदयों को अपनी शोभा से आह्लादित करती है, और स्थान २ पर कूप, बावड़ी, तालाव, सरोवर, कुण्ड, गुफा आदि के दृश्य भी आनन्ददायक हैं।

उपर्युक्त तीर्थस्थान तथा बाह्य सुन्दरता के कारण आबू पर्वत, यदि सर्व पर्वतों में श्रेष्ठ एवं परम तीर्थ स्वरूप माना जाय तो इसमें कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। आबू प्राचीन तथा पवित्र तीर्थ है। यहां पर कतिपय ऋषि महर्षि लोग आत्म-कल्याण तथा आत्म-शक्तियों के विकास के लिए नाना प्रकार की तपस्याएं तथा ध्यान करते थे। आज कल भी यहां अनेक साधु-सन्त दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु उन साधुओं में से अधिकांश साधु तो बाह्याडम्बरी, उदरपूर्ति और यश-कीर्ति के लोभी प्रतीत होते हैं। जब हम गुफायें देखने गये तब हमने दो चार गुफाओं में जिन व्यक्तियों को योगी, ध्यानी एवं त्यागी का स्वरूप धारण किये देखा, उन्हीं महानुभावों को दूसरे समय आबू कैम्प के बाजारों में पानवालों की दुकानों पर बैठ कर गप शप करते, पान चबाते और इधर उधर भटकते हुए देखा। वर्त्तमान समय में आत्म-कल्याण के साथ परोपकार करने की भावना से युक्त सच्चे साधु-महात्मा तो बहुत ही कम दिखाई देते हैं। आबू पर्वत पर तेरहवीं शताब्दि में बारह

गांव बसे हुए थे। आज कल भी लगभग उतने ही गांव विद्यमान हैं। आबू पर्वत पर चढने के लिये रसिया वालम ने बारह मार्ग बनाये थे, ऐसी दन्तकथा* है। भारतवर्ष में दक्षिण दिशा में नीलगिरि से उत्तर दिशा में हिमालय और इनके बीच के प्रदेश में आबू को छोड़ कोई भी पर्वत इतना ऊँचा नहीं है जिस पर गांव बसे हों। अभी आबू पर्वत के ऊपरी भाग की लम्बाई १२ मील और चौड़ाई २ से ३ मील तक की है। समुद्र से आबू कैम्प के बाज़ार के पास की ऊँचाई ४००० फीट तथा गुरुशिखर की ऊँचाई ५६५० फीट है, अर्थात् आबू पर्वत का सब से ऊँचा स्थान गुरुशिखर है। आबू पर चढ़ने की शुरूआत करने वाले यूरोपियनों में कर्नल टॉड की गणना सब से प्रथम की जाती है।

प्राचीन काल में वशिष्ठ ऋषि यहां पर तपस्या करते थे। उनके अग्निकुण्ड में से परमार, पड़िहार, सोलंकी और चौहान नामक चार पुरुषों का जन्म हुआ था, उनके

---

* "हिन्दु तीर्थ और दर्शनीय स्थान" नामक प्रकरण में (१३-१४) "कन्याकुमारी और रसियावालम" के वर्णन के नीचे की फुटनोट देखो।

वंशजों की उक्त नामों की चार शाखायें हुई, ऐसी राजपूतों की मान्यता है।

आबू पर्वत पर सं० १०८८ में विमलशाह ने जैन मंदिर निर्माण कराया। यद्यपि उस समय इस पर्वत पर अन्य कोई जैन मंदिर विद्यमान नहीं था, परन्तु प्राचीन अनेक ग्रन्थों से निश्चित होता है कि महावीर प्रभु के ३३ वें पाट के पट्टधर विमलचन्द्रसूरि के विनेय (शिष्य) वडगच्छ (वृद्धगच्छ) के संस्थापक उद्‌द्योतनसूरि यहाँ पर वि० सं० ९९४ में यात्रार्थ पधारे थे, इस से यहां पर जैन मन्दिरों के अस्तित्व की संभावना की जा सकती है। संभव है कि उसके बाद ९४ वर्ष के अन्तर में जैन मंदिर नष्ट हो गये हों। हाल में ही आबू की तलहटी में आबूरोड स्टेशन से पश्चिम दिशा में ४ मील की दूरी पर मूंगथला (मुंडस्थल महातीर्थ) नामक ग्राम के गिरे हुये एक जैन मन्दिर से हमको एक प्राचीन लेख मिला है, जिससे मालूम होता है कि-भगवान श्रीमहावीर स्वामी अपनी छद्मस्थ अवस्था में (सर्वज्ञ होने के पहिले) अर्बुद भूमि में विचरे थे। भगवान के चरण स्पर्श से पवित्र हुए आबू और उसके आसपास की भूमि पवित्र तीर्थ स्वरूप माने जायें तो इसमें क्या आश्चर्य है? उपर्युक्त

कथन से यह सिद्ध होता है कि विमलशाह ने यहां पर जैन मंदिर बनवाया उससे पहले भी आबू जैन तीर्थ था।

शास्त्रों में आबू के अर्बुदगिरि तथा नंदिवर्धन नाम दृष्टिगोचर होते हैं।

आबू पर्वत की उत्पत्ति के लिये हिन्दू धर्मशास्त्रों में लिखा है, और यह बात हिन्दुओं में बहुत प्रसिद्ध भी है कि प्राचीन काल में यहां पर ऋषि तपस्या करते थे, उन तपस्वियों में से वशिष्ठ नामक ऋषि की कामधेनु गाय उत्तंकऋषि के खोदे हुए गहरे खड्डे में गिर पड़ी। गाय उसमें से बाहिर निकलने को असमर्थ थी, किन्तु स्वयं कामधेनु होने से उसने उस खाई को दूध से परिपूर्ण किया और अपने आप तैर कर बाहिर निकल आई। फिर कभी ऐसा प्रसंग उपस्थित न हो इस वास्ते वशिष्ठ ऋषि ने हिमालय से प्रार्थना की; इस पर हिमालय ने ऋषियों के दुःख को दूर करने के लिये अपने पुत्र नन्दिवर्धन को आज्ञा की। वशिष्ठजी नन्दिवर्धन को अर्बुद सर्प द्वारा वहां लाये और उस खड्डे में स्थापित करके खड्डा पूर दिया, साथ ही अर्बुद सर्प भी पर्वत के नीचे रहने लगा। (कहा जाता है कि वह अर्बुद सर्प छः छः महीने में बाजू

फेरता है उसही से आबू पर्वत पर छः छः महीने के अन्तर से भूकम्प होता है)-इसी कारण इस गिरि का अर्बुद तथा नन्दिवर्धन नाम प्रसिद्ध हुआ होगा ? नन्दिवर्धन पर्वत अर्बुद सर्प द्वारा वहाँ लाया गया उससे पहिले भी यह भूमि पवित्र थी, यह बात स्पष्टतया निश्चित है। क्योंकि यहाँ पर पहिले भी ऋषि तपस्या करते थे।

रास्ता—राजपूताना मालवा रेलवे होने के पहिले आबू पर जाने के वास्ते पश्चिम दिशा में (१) अनादरा तथा पूर्व दिशा में (२) खराड़ी–चन्द्रावती, यह दो मुख्य मार्ग थे। अनादरा, सिरोही राज्य का प्राचीन गाँव है, और वह आगरा से जयपुर, अजमेर, ब्यावर एरनपुरा, सिरोही, डीसाकेम्प होकर अहमदावाद जाने वाली पक्की सड़क के किनारे पर बसा है *। यहां पर श्री महावीर स्वामि का प्राचीन जैन मन्दिर, जैन धर्मशाला और पोस्ट ऑफिस इत्यादि हैं।

---

* यह सड़क ब्रिटिश गवर्नमेण्ट द्वारा ई० सन् १८७१ से १८७६ के बीच में बनाई गई है। सिरोही राज्य की सीमा में यह सड़क आजकल बिल्कुल जीर्ण हो गई है कई स्थानों में तो सड़क का नामोनिशान भी नहीं है, केवल मील सूचक पत्थर अवश्य लगे हैं।

आबू रोड (खराड़ी) से आबू कैम्प तक की पक्की सड़क बनने से अनादरे का मार्ग गौण हो गया—मुख्य न रहा, तो भी सिरोही राज्य एवं समीपवर्त्ती ग्राम के लोगों के लिये यही मार्ग अनुकूल है। आबू कैम्प वासियों के लिये दूध, घी, शाकादि वस्तुएँ प्रायः इसी मार्ग द्वारा ऊपर लाई जाती हैं, इसी कारण से यह मार्ग बराबर चालू है। अनादरा गाँव से कच्चे मार्ग पर पूर्व दिशा में लगभग १॥ मील चलने पर सिरोही स्टेट का डाक बंगला मिलता है; वहां से आधे मील की दूरी पर आबू की तलेटी है *। वहां से तीन मील ऊँचा चढ़ाव है। चढ़ने के लिये छोटे नाप की कचीसी सड़क बनी हुई है जिस पर बोझ लदे हुवे बैल, पाड़े व घोड़े आसानी से चढ़ सकते हैं। बीच में देलवाड़ा जैन कारखाने की तरफ से स्थापित की गई पानी की प्याऊ मिलती है। मार्ग में कई एक स्थानों पर भील लोगों के छप्पर भी दृष्टिगोचर होते हैं। वन होने के कारण प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीय लगते हैं। ऊपर पहुँचने पर वहाँ से आबू कैम्प का बाज़ार १॥ और देलवाड़ा २ मील दूर है, जहां

---

* यात्रियों की अनुकूलता के लिये अभी यहां एक जैन धर्मशाला बनाने का कार्य आरंभ हुआ है। देलवाड़ा जैन कारखाने की ओर से यहां एक पानी की प्याऊ भी है।

आने को पक्की सड़कें हैं। सीधे देलवाड़ा जाने वाले को नक्की तालाब तथा कबर के समीप से देलवाड़ा की सड़क पर होकर देलवाड़ा जाना चाहिये।

दूसरा मार्ग आबू रोड (खराड़ी) की तरफ से है।

सिरोही के महाराव शिवसिंहजी ने वि० सं० १६०२ (सन् १८४५) में आबू पर्वत पर अंग्रेज सरकार को सेनीटोरीयम (स्वास्थ्यदायक स्थान) बनाने के वास्ते १५ शर्तों पर जमीन दी। फिर सरकार ने छावनी स्थापित की, तत्पश्चात् आबू कैम्प से खराड़ी तक १७॥ मील की लम्बी पक्की सड़क बनवाई।

ता० ३० दिसम्बर सन् १८८० के दिन 'राजपूताना मालवा रेल्वे' का उद्घाटन हुआ, उस समय खराड़ी (आबू रोड) स्टेशन स्थापित किया गया; तब से यह मार्ग विशेष उपयोगी हुआ। इस सड़क के बनने के पहिले यह मार्ग बहुत विकट था। हाथी, घोड़ों और बैलों द्वारा सामान ऊपर भेजा जाता था। कहा जाता है कि देलवाड़ा जैन मन्दिर के बड़े बड़े पाषाण हाथियों पर लाद कर चढ़ाये गये थे। सड़क बन जाने से अब वह विकटता जाती रही। यद्यपि

बैलगाड़ी के साथ रात्रि में चौकीदार की आवश्यकता होती है; परन्तु दिन को ज़रा भी भय नहीं है।

खराड़ी गांव में अजीमगंज निवासी राय बहादुर श्रीमान् बाबू बुद्धिसिंहजी दुधेड़िया की बनवाई हुई एक विशाल जैन धर्मशाला है, जिसमें एक जैन मन्दिर भी विद्यमान है, मुनीम रहता है, यात्रियों को हर तरह का सुभीता है। जैन धर्मशाला के पीछे हिन्दुओं के लिये एक नई तथा अन्य अनेक धर्मशालायें हैं।

आबू रोड से ४॥ मील दूर, आबू कैम्प की सड़क पर मील नम्बर १२-२ के पास "शान्ति-आश्रम" नामक एक सार्वजनिक जैन धर्मशाला अभी बन रही है, जिसका लाभ सभी मुसाफिर ले सकेंगे।

आबू रोड से १२॥ मील ऊपर चढ़ने पर एक धर्मशाला आती है, वह आरणा गांव में होने से आरणा तलेटी के नाम से प्रसिद्ध है। वहां पर जैन साधु साध्वी और यात्री भी रात्रि को निवास कर सकते हैं। यात्रियों के लिये हर तरह का प्रबन्ध है। यहां पर जैन यात्रियों को भाता (नाश्ता) तथा गरीबों को चने दिये जाते हैं। यहाँ की देख रेख अचलगढ़ के जैन मंदिरों के प्रबन्धक रखते हैं।

जहां से आबू कैम्प १ मील शेष रहता है, वहाँ (ढूंढाई चौकी के समीप) से देलवाडा की एक नई सीधी सड़क महाराव सिरोही, महाराजा अलवर, जैन संघ तथा गवर्नमेण्ट की सहायता से थोड़े ही समय से बनी है। इस सड़क के बन जाने से आबू कैम्प गये बिना ही सीधे देलवाड़े तक वाहनादि जा सकते है। जब यह नई सडक नहीं बनी थी, तब जैन यात्रियों को अधिक कष्ट सहन करना पड़ता था। देलवाड़ा जाने वाले को आबू कैम्प नहीं जाने देते थे। इस कारण से गाडी-तांगे वाले, जहां से नई सड़क प्रारम्भ होती है, उसी स्थान पर जंगल में यात्रियों को उतार देते थे। मजदूर कुली आदि भी कभी कभी नहीं मिलते थे। यात्रियों को १॥ मील तक सामान उठा कर पैदल पहाड़ी मार्ग से जाना पडता था। उपर्युक्त कष्ट का अनुभव इन पंक्तियों के लेखक ने भी किया है। परन्तु नई सड़क बन जाने से यह सब कठिनाइयां दूर हो गई।

इन दो मार्गों के अतिरिक्त आबू के आसपास के चारों तरफ के गांवों से आबू पर जाने के लिये अनेक खुश्की पगडण्डी मार्ग है, किन्तु उन मार्गों से भोमिया और चौकीदार लिये बिना आना जाना भययुक्त है।

मुख्यतया जंगल में निवास करने वाली भील आदि जाति
लोग भी ऐसे मार्गों से बिना शस्त्र लिये आते जाते नहीं है

आबू कैम्प के आसपास चारों तरफ और आबू कैम
से देलवाड़ा होकर अचलगढ़ तक पकी सड़कें बनी हुई है

वाहन—आबूरोड (खराड़ी) से आबू पर्वत प
जाने के लिये वाहन (सवारियां) चलाने का गवर्नमेण
की तरफ से ठेका दिया गया है, इस कारण से ठेकेदार
अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति किराये पर वाहन नहीं चल
सकता है। आबूरोड स्टेशन से, आबू पर्वत पर दिन में द
वक्त सुबह-शाम किराये की मोटरें नियमित आती जाती है
इसके लिये आबूरोड और आबू कैम्प में ठेकेदार के ऑफि
में चौबीस घंटे पहले सूचना देने से फर्स्ट, सैकण्ड य
थर्ड क्लास के टिकिट प्राप्त कर सकते हैं। यदि मोटर
जगह हो तो सूचना न देने से भी जगह मिल जाती है। इसके
अलावा स्वतंत्र मोटर अथवा बैल गाड़ियों के वास्ते २४ घण
पहिले नीचे उतरने के लिये आबू कैम्प में और ऊपर चढ़
के वास्ते खराड़ी में ठेकेदार के ऑफिस में, सूचना देने
वाहन मिल सकता है। मोटर चार्ज गवर्नमेण्ट की तरफ
निश्चित किया गया है। यात्रियों से ऊपर जाने के लिये थ

क्लास के १॥।) रु० तथा टोल-टैक्स के ।) याने कुल २) रु० लिये जाते हैं। आबू पर रहने वालों से टोल-टैक्स माफ होने के कारण १॥।) रु० लिये जाते हैं। ऊपर से नीचे आने वाले प्रत्येक मनुष्य से १॥।) रु० लिये जाते हैं। आने जाने के लिये रिटर्न टिकिट के ३॥=) रु० लिये जाते हैं, जो कि एक महीने तक चल सकता है। आबू कैम्प से देलवाड़े तक आने अथवा जाने के लिये बारह सवारी के मोटर का चार्ज ३) रु० ठेकेदार लेता है, बारह से कम सवारी हो तब भी पूरा तीन रुपया देना पडता है। बाद में सिरोही स्टेट की ओर से फी मोटर आठ आने का नया टैक्स लगाया गया है, जिसको ठेकेदार यात्रियों से वसूल करता है।

देलवाड़े से अचलगढ़ जाने के लिये किराये की बैल गाडियां व घोडे, जिसका ठेका सिरोही स्टेट की ओर से दिया गया है और किराया भी निश्चित किया हुआ है, ठेकेदार द्वारा मिलते हैं; तथा आबू पर्वत पर सर्वत्र भ्रमण करने के लिये रिक्सा (एक प्रकार की टमटम जो आदमी द्वारा खींची जाती है) किराये पर मिलती है।

अनादरा के मार्ग से आबू जाने के लिये अनादरा गांव में किराये के घोडे मिल सकते है। इस मार्ग पर

सड़क चौड़ी और पक्की बँधी हुई नहीं है। इस कारण घोड़े के अतिरिक्त अन्य वाहन ऊपर नहीं जा सकते हैं। यहां पर किराये की सवारियों के लिये स्टेट की तरफ से ठेका नहीं है। इस प्रकार वाहनों का ठेका देने का हेतु सरकार किंवा स्टेट की तरफ से यह प्रगट किया जाता है कि "मेला आदि किसी भी प्रसंग पर यात्रियों को उनकी आवश्यकतानुसार वाहन निश्चित रेट पर मिल सकें" यह बात सत्य है, किन्तु इसके साथ ही अपनी आय की वृद्धि करने का हेतु भी इसमें सम्मिलित है। यात्रियों का सच्चा हित तो तब ही कहा जा सकता है जब कि राज्य ठेकेदारों से किसी प्रकार का कर लिये बिना यात्रियों को वाहन सस्ते में मिल सके, ऐसा प्रबंध करें।

यात्रा टैक्स (मूंडका)—देलवाड़ा, गुरुशिखर, अचलगढ़, अधरदेवी और वशिष्ठाश्रम की यात्रा करने व देखने को आने वाले सब लोगों से सिरोही राज्य द्वारा फी मनुष्य रु० १-३-६ यात्रा टैक्स लियाजाता है। उपर्युक्त पांच स्थानों में से किसी भी एक स्थान की यात्रा करने व देखने के लिये आने वालों को भी पूरा कर देना पड़ता है। एकबार कर देने से वह आबू पर्वत के प्रत्येक तीर्थ की यात्रा कर सकता है। आबू

कैम्प वासी एक बार कर देने से एक वर्ष पर्यन्त सब स्थानों की यात्रा का लाभ उठा सकते हैं।

निम्नलिखित लोगों का यात्रा टैक्स माफ है:—

१—समग्र यूरोपियन्स तथा एङ्गलो इण्डियन्स,

२—राजपूताना के महाराजा तथा उनके कुमार,

३—साधु, संन्यासी, फकीर, यात्रा सेवक और ब्राह्मण आदि जो शपथ पूर्वक कहें कि मैं द्रव्य-रहित हूँ,

४—सिरोही राज्य की प्रजा,

५—तीन वर्ष तक की अवस्था वाले बालक।

चौकी तथा मूंडके के सम्बन्ध में एक नोटिस सिरोही स्टेट की तरफ से सं० १६३८ माघ शुक्ला ६ को प्रकाशित हुआ था। इसके बाद तारीख १ अक्टूबर सन् १६१७ से आबू पहाड का कुछ हिस्सा लीज (पट्टे पर) पर राज्य सिरोही की तरफ से बृटिश सरकार को दे दिया गया जिससे उसमें कुछ परिवर्त्तन करके करीब उसी आशय का एक नोटिस ता० १-६-१६१८ को निकाला गया जो आबू लीज एरिया में ठहरने व रहने वालों के लिये है मूंडके के हुक्मों के सम्बन्ध में इस ग्रंथ के परिशिष्ट देखे जाएँ।

मूंडके का टिकिट आबूरोड स्टेशन पर मोटर में बैठते ही स्टेट का नाकेदार रु० १-३-६ लेकर देता है।

कुछ वर्षों के पहले उस टिकिट पर 'चोकी वळावा बदल मुंडकुं' ऐसे शब्द होने का हमें याद आता है। परन्तु अभी कुछ समय से ये शब्द निकाल कर सिर्फ 'मूंडका टिकिट' शब्द ही रक्खे हैं। पहले संवत् १६३८ के हुक्म के अनुसार जुदे जुदे तीर्थ स्थानों के लिये अलग २ थोड़ी थोड़ी रकम ली जाती थी। ऐसा मालूम होता है कि पीछे से सबको मिलाकर एक रकम निश्चित कर उसमें भी थोड़ी रकम और मिलादी गई है। परिणाम यह हुआ कि-चाहे कोई एक तीर्थ को जाय, चाहे सब तीर्थों को, कुल रकम देनी ही पड़ती है। इस अनुचित टैक्स को हटवाने के विषय में जैन समाज प्रयत्न कर रहा है।

मूंडका माफी की कलम ४ के अनुसार सिरोही स्टेट की समस्त प्रजा का मूंडका माफ है लेकिन प्रत्येक मनुष्य से बतौर चौकी रु. ०-६-६ लिये जाते हैं। यद्यपि आबू-रोड से देलवाड़ा तक कुल रास्ते में कोई भी चौकी राज की सन १६१८ से नहीं है।

अनादरा से आबू पर जाने वाले यात्रियों से नीबज के ठाकुर साहब प्रत्येक मनुष्य से चौकी के रु. ०-३-६ लेते है, यहां पर जिसने साढे तीन आने दिये हों उससे आबू पर सिर्फ रु. १-०-३ लिये जाते है।

सिरोही के वर्तमान महाराव के पूर्वज चौहान महाराव लुम्भाजी के, इन जैन मन्दिरों, इनके पुजारियों और यात्रियों से किसी भी प्रकार का कर (टैक्स) न लेने सम्बन्धी, सम्वत् १३७२ का १ तथा १३७३ के २ शिलालेख विमलवसहि में विद्यमान है, जिनमें उनके वंशज तथा उत्तराधिकारियों (वारिसदारों) को भी उपर्युक्त आज्ञा का पालन करने का फर्मान है। इसी प्रकार इसी आशय वाले महाराजाधिराज सारङ्गदेव कल्याण के राज्य में विसल-देव का सं० १३५० का, महाराणा कुम्भाजी का सं० १५०६ का तथा पित्तलहर मन्दिर के कर माफ करने के लिये राउल राजधर का सं० १४९७ का, ये लेख * विद्यमान होते हुए भी कलियुग के प्रभाव अथवा लोभ से भण्डार को भरपूर करने के लिये अपने पूर्वजों के फर्मानों पर पानी फेर कर आजकल के राजा महाराजा

* ये सब शिलालेख आबू के 'लेख-सग्रह' में प्रकट किये जावेंगे।

यात्रा टैक्स लेने को कटिबद्ध हुए हैं, यह बड़े खेद की बात है। सिरोही के महाराव इस विषय पर खूब गौर कर, अपने पूर्वजों के लिखे हुए दान-पत्रों को पढ़कर यात्रा टैक्स (मूंडका) सर्वथा बन्द करके जनता का आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।

देलवाड़ा—आबू रोड से १७॥। मील तथा आबू कैम्प से एक मील दूर, अत्युत्तम शिल्प कला से ख्याति पाने वाले जैन मन्दिरों से सुशोभित, **देलवाड़ा** नामक गाँव है। हिन्दुओं तथा जैनों के अनेक देवस्थान विद्यमान होने के कारण शास्त्रों में इस गाँव का नाम देवकुल पाटक अथवा देवलपाटक कहा है। यहां पर जैन मन्दिरों के अलावा आसपास में (१) **श्रीमाता** (कन्याकुमारी), (२) **रसिया बालम**, (३) **अर्बुदादेवी–अम्बिकादेवी** (जो आजकल अधरदेवी के नाम से विख्यात है), (४) **मौनी बाबा की गुफा**, (५) **संतसरोवर**, (६) **नल गुफा**, और (७) **पांडव गुफा** आदि स्थान हैं, जिनका वर्णन आगे "हिन्दुतीर्थ और दर्शनीय स्थान" नामक प्रकरण में किया जायगा। यहाँ पर केवल जैन मन्दिरों का ही वर्णन किया जाता है।

देलवाड़ा गाँव के निकट ही एक ऊँची टेकरी पर ` कम्पाउण्ड में श्वे० जैनों के पाँच मन्दिर मौजूद

हैं-(१) मंत्री विमलशाह का बनवाया हुआ विमलवसहि (२) मंत्री वस्तुपाल के लघु भाई मंत्री तेजपाल का बनवाया हुआ लूणवसहि (३) भीमाशाह का बनवाया हुआ पित्तलहर (४) चौमुखजी का खरतरवसहि और (५) वर्द्धमान स्वामी (वीर प्रभु)। इन पाँच मन्दिरों में से शुरु के दो मन्दिर संगमरमर की उत्तम नक्शी से शोभित हैं। तृतीय मन्दिर में मूलनायकजी की पीतल की १०८ मन की, पंचतीर्थी के परिकर वाली मनोहर मूर्त्ति है। चतुर्थ मन्दिर, तीन खण्ड (मंज़िल) ऊँचा होने और अपना मुख्य गंभारा मनोहर नक्शी वाला होने से दर्शनीय है। पांच में से चार मन्दिर तो एक ही कम्पाउण्ड में हैं। चौमुखजी का मन्दिर मुख्य (पूर्वीय) द्वार से प्रवेश करते दाहिनी ओर एक जुदे कम्पाउण्ड में है।

कीर्त्तिस्तम्भ से बाँई ओर की सीढियों से थोड़ा ऊपर चढ़ने पर एक छोटासा मन्दिर मिलता है, जिसमें दिगम्बर जैन मूर्त्तियाँ हैं। उसके पीछे कुछ ऊँचाई पर दो-तीन मकान हैं, जिनमें पुजारी आदि रहते हैं।

लूण-वसहि मंदिर के मुख्य दरवाजे से जरा आगे उत्तर दिशा में एक छोटासा दरवाजा है, जिसमें होकर

सीढ़ी चढ़ते कुछ ऊँचाई पर एक मकान है, जिसके बाहर एक छोटी गुफा है। उसके निकट एक पीपल के वृक्ष के नीचे अंबाजी की एक खंडित मूर्त्ति है। उसके पास के रास्ते से ज़रा ऊँचाई पर चार देहरियाँ हैं। इस रास्ते से सीधे हाथ की तरफ़ कार्यालय का एक मकान है। इन चार देहरियों में से तीन में जैन मूर्त्तियाँ हैं और एक में अम्बिका की मूर्त्ति है। ये चार देहरियाँ 'गिरनार की चार टूंक' के नाम से प्रसिद्ध है।

यूरोपियन्स और राजा-महाराजा इन मन्दिरों के दर्शन करने आते हैं। उनके विश्राम के लिये मुख्य पूर्वीय दरवाज़े के बाहर जैन श्वेताम्बर कार्यालय की तरफ़ से एक वेटिंगरूम (विश्रांतिगृह) बना हुआ है। इस स्थान पर चमड़े के जूते उतार कर कार्यालय की तरफ़ से रखे हुए कपड़े के बूट पहिनाये जाते हैं। कई साल पहिले यूरोपियन विज़ीटर्स चमड़े के बूट पहिन कर मन्दिरों में प्रवेश करते थे, जिससे जैन समाज को अत्यन्त दुःख होता था। असीम परिश्रम करने पर भी वह कष्ट दूर नहीं हुआ था। यह बात जगत्पूज्य स्वर्गस्थ गुरुदेव श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी को बहुत ही अनुचित प्रतीत होने से उन्होंने उस समय के राजपूताना के एजण्ट टू दी

गवर्नर ,जनरल मि० कालविन साहव से मिल कर उनको अच्छी तरह से समझाया। तत्पश्चात् लण्डन के इण्डिया ऑफिस के चीफ लायब्रेरीयन डा० थॉमस साहव की सिफारिश पहुंचा कर, "चमड़े के बूट पहिन कर कोई भी व्यक्ति मन्दिर में दाखिल नहीं हो सकेगा" ऐसा एक हुक्म गवर्नमेण्ट से प्राप्त करके करीब विक्रम सं० १९७० से सदा के लिये यह आशातना दूर करादी।

पूर्वीय दरवाजे के बाहर वेटिङ्गरूम के पास सामने की ओर कारीगरों के रहने के लिये और दरवाजे के अन्दर कार्यालय के मकान हैं, जिनमें हाल नौकर और पुजारी रहते हैं। मन्दिरों में जाने के मुख्य द्वार के पास बांई ओर जैन श्वेताम्बर कार्यालय है। पेढी का नाम सेठ कल्याणजी परमानन्दजी है। बिस्तरे आदि वस्तुओं का गोदाम है। रास्ते के दोनों तरफ कार्यालय के छोटे तथा बड़े मकान हैं। ऊपर के एक मकान में जैन श्वेताम्बर पुस्तकालय है।

यहां पर जैन यात्रियों को ठहरने के लिये दो बड़ी धर्मशालाएँ हैं। उनमें से एक, दो मंज़िल की बड़ी धर्मशाला श्री संघ की ओर से बनी है, और दूसरी अहमदाबाद निवासी सेठ हठीभाई हेमाभाई की बनवाई

हुई है। यात्रियों के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। यात्रियों के वाहनादि का प्रबन्ध तथा अन्य किसी भी कार्य के लिये कार्यालय में सूचना देने से मैनेजर प्रबन्ध करा देता है। यात्रियों की सुगमता के लिये यहां पर एक पुस्तकालय है, जिसमें अभी थोड़ी पुस्तकें हैं, और कुछ समाचारपत्र भी आते हैं। परन्तु यात्रीगण इस पुस्तकालय का लाभ अच्छी तरह से नहीं लेते। यहां के मन्दिरों तथा कार्यालय की देखरेख सिरोही संघ से नियत की हुई कमेटी करती है।*

---

* सेठ कल्याणजी परमानंद (देलवाड़ा जैन कार्यालय) की एक पुरानी बही मेरे देखने में आई। उस पर लगी हुई चिट्ठी से उसमें वि० सं० १८४६ का हिसाब मालूम हुआ। परन्तु उसका सं० १८४६ के हिसाब के साथ सामान्य रीति से वि० सं० १८३९ से १८६५ तक का हिसाब और दस्तावेज़ वगैरह भी थे।

उस वही के किसी २ लेख से मालूम होता है कि—उक्त समय में यहां के मन्दिरों की व्यवस्था सिरोही श्रीसंघ के हाथ में थी। वि० सं० १८५० के आसपास श्रीअचलगढ़ के जैन मन्दिरों की व्यवस्था भी देलवाड़े के अधीन थी। दोनों पर सिरोही के श्रीसंघ की देखरेख थी। उस समय देलवाड़े में यति लोग रहते थे। सिरोही के पंचों की सम्मति से, मन्दिर की व्यवस्था पर उनकी सीधी देखरेख रहती और वे मन्दिर के हित के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करते थे। उस समय बाहर से जो भी यति लोग यहां यात्रा के लिये आते, वे भी यथाशक्ति नक़द रकम आदि भेंट रूप में जमा कराते थे।

अचलगढ़ की ओर जाने वाली सडक के किनारे पर एक दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशाला है। धर्मशाला में दिगम्बर जैन यात्रियों के लिये सब प्रकार की व्यवस्था है। इस दिगम्बर जैन मन्दिर में वि० सं० १४६४ वैशाख शुक्ला १३ गुरुवार का एक लेख है, जिसमें लिखा है कि श्वेताम्बर तीर्थ—श्री आदिनाथ, श्री नेमिनाथ और श्री पित्तलहर; इन तीन मन्दिरों के बनने के पश्चात् श्री मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वती गच्छ के भट्टारक श्रीपद्मनन्दी के शिष्य भट्टारक शुभचन्द्र सहित संघवी गोविन्द, दोशी करणा और गांधी गोविन्द वगैरह समस्त दिगम्बर संघ ने आबू पर राज श्रीराजधर देवडा चूंडा के समय में यह दिगम्बर जैन मन्दिर बनवाया।

श्रीमाता (कन्याकुमारी) से थोड़े फासले पर जैन श्वेताम्बर कार्यालय का एक उद्यान है,* जिसमें शाक-भाजी, फल, फूलादि उत्पन्न होते हैं।

---

* प्राप्त वही से यह भी मालूम होता है कि उक्त सम्वत् में (१८९० के आसपास) कुछ अरट (बड़े कुए के साथ बड़े खेत) और जोड़ (घास के लिये बीड़) वगैरह भी श्रीआदीश्वरजी के मन्दिरजी की मालिकी के थे। उन अरट वगैरह के नाम उक्त वही में लिखे हुए हैं। उन खेतों के खेडने का तथा बीड़ के घास को काटने का ठेका समय समय पर देने के दस्तावेज भी हैं।

यहां के मन्दिरों में जो चढ़ावा आता है उसमें से चावल, फल और मिठाई पुजारियों को दी जाती हैं; शेष द्रव्यादि सर्व वस्तुएँ भंडार में जमा होती हैं।

चैत्र कृष्णाष्टमी (गुजराती फाल्गुन कृष्णाष्टमी) के दिन, आदीश्वर भगवान् का जन्म तथा दीक्षा-कल्याणक होने से, यहां बड़ा मेला भरता है। उस मेले में जैनों के अतिरिक्त आस पास के ठाकुर, किसान, भील आदि बहुत लोग आते हैं। वे सब भक्ति पूर्वक भगवान् के मन्दिर में जाकर नमस्कार करते हैं; और यथाशक्ति भेट चढ़ाते हैं। उन लोगों को कार्यालय की तरफ से मका की घूघरी दी जाती है।*

---

* पहिले इस मेले में अजैन लोग आकर, खास मन्दिर के चौक में गैर खेलते थे। (होली के निमित्त बीच में ढोली को रख कर सौ-पचास आदमी गोल में रहकर दंडे खेलते हैं, उसको 'गैर खेलना' कहते हैं)। इससे भगवान की आशातना होती थी। तथा सूक्ष्म नकशी को भी नुकसान होने का भय रहता था। इसलिये वि० सं० १८२३ में श्रीक्षमाकल्याणजी ने आबू के देलवाड़ा, तोरणा, सोना, ढुंढाई, हेटमजी, आरणा, ओरीसा, उतरज, सेर और अचलगढ़ आदि बारह गांवों के मुखिया लोगों को इकट्ठा करके, उन सब को राज़ी खुशी से मंदिरों में 'गैर' खेलना बंद कराया और भीमाशाह के मंदिर के पीछे (पूर्वीय दरवाज़े के बाहर) बड़ के आसपास के चौक में, जो चौक आदीश्वरजी के मन्दिर के आधीन

अचलगढ जाने वाले यात्रियों की बैलगाड़ियाँ यहां से नित्य लगभग आठ बजे रवाना होती है, और यात्रा पूजा-सेवादि क्रिया कराके सायंकाल में लगभग पांच बजे वापिस आती हैं। सिरोही स्टेट का एक सिपाही तो गाड़ियों के साथ नित्य जाता है।

जैन यात्रियों के अतिरिक्त अन्य विजीटर्स (अजैन यात्रियों) को हमेशा दिन के १२ से ६ बजे तक ही मन्दिर में जाने देने का रिवाज है जिसको स्थानीय सरकार ने भी मन्जूर कर लिया है। अतएव अजैन यात्रियों को उपर्युक्त समय नोट कर लेना चाहिये। उक्त समय में सिरोही स्टेट पुलिस का आदमी यहां बैठता है, जो यात्रा टैक्स का पास देख कर मन्दिर में जाने देता है।

आबू पहाड़ और देलवाड़ा का संक्षिप्त वर्णन करने के पश्चात् देलवाड़े के जैन मन्दिरों का भी संक्षेप में वृत्तान्त देना आवश्यकीय समझता हूँ।

है, 'गैर' खेलना शुरू कराया और इस नियम का भग करने वाले से सवा रुपया दंड आदीश्वरजी के भंडार में लेने का निश्चित किया यह रिवाज़ अभी तक इसी प्रकार से चला आता है। इस दस्तावेज़ में उपर्युक्त १० गावों के नाम दिये हैं। नीचे हस्ताक्षर तथा गवाहियां हैं। भीमाशाह के मन्दिर के पीछे का बड़वाला चौक श्रीआदीश्वरजी के मन्दिर का है। ऐसा इस दस्तावेज में साफ साफ लिखा है।

विमल-वसहि

विमल मन्त्री के पूर्वज—मरुदेश (मारवाड़) में 'श्रीमाल' नामक एक नगर है। आज कल इसकी ख्याति भीनमाल के नाम से है। यह पहिले अत्यन्त समृद्धि-शाली तथा किसी समय गुजरात देश का मुख्यनगर राजधानी था। यहां पर 'प्राग्वाट्'—पोरवाल ज्ञाति का आभूषणरूप '**नीना**' नामक एक करोड़पति सेठ निवास करता था, जो अत्यन्त सदाचारी और परम श्रावक था। काल के प्रभाव से अपना धन क्षय होने पर उसने 'भीनमाल' को छोड़कर गुर्जर-देशान्तर्गत '**गांभू**' नामक ग्राम को अपना निवास-स्थान बनाया। वहां पर उनका पुनः अभ्युदय हुआ और ऋद्धि-सिद्धि आदि भी प्राप्त हुई। उसका 'लहर' नामक एक बड़ा विद्वान एवं शूरवीर पुत्र था। वि० सं० ८०२ में 'अणहिल' नामक गडरिये के बताये हुए स्थान पर 'वनराज चावडा' ने 'अणहिलपुर पाटन' बसाया एवं जालिवृक्ष के समीप स्वकीय प्रासाद महल—निर्माण कराया। तत्पश्चात् 'वन राज चावड़ा' ने किसी समय 'नीना' सेठ एवं उसके

पुत्र 'लहर' के समाचार सुनकर उन दोनों को 'अणहिलपुर पाटन' में ले जाकर बसाया। वहां पर उन लोगों को वैभव सुख तथा कीर्त्ति आदि की विशेष प्राप्ति हुई। 'वनराज' 'नीना' सेठ को अपने पिता के तुल्य मानता था उसने 'लहर' को शूरवीर समझ कर अपनी सेना का सेनापति नियत किया। 'लहर' ने सेनपति रह कर 'वनराज' की अच्छी तरह सेवा की। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर वनराज ने उसको 'संडस्थल' नामक ग्राम भेट में दिया।

मंत्री 'वीर' मन्त्री 'लहर' के वंश में उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नि का नाम 'वीरमति' था। वीर मंत्री 'अणहिलपुर' के शासक 'मूलराज' का मंत्री था, किन्तु धार्मिक होने के कारण राज्य-खटपट तथा सांसारिक उपाधियों से अत्यन्त उदासीन-विरक्त—रहता था। अन्त में उसने राज्य-सेवा तथा स्त्री, पुत्रादि के मोह-ममत्त्व को सर्वथा त्याग कर पवित्र गुरु महाराज के समीप चारित्र-दीक्षा अङ्गीकार कर के आत्मकल्याण किया। वि० * सं० १०८५ में उसका स्वर्गवास हुआ।

* इस पुस्तक में जहां पर वि० स० या स० का उपयोग किया हो वहां पर विक्रम संवत् ही जानना चाहिये।

विमल—'वीर मंत्री' के ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'नेढ' तथा छोटे का नाम 'विमल' था। ये दोनों भाई विद्वान एवं उदार वृत्ति वाले थे। 'नेढ' 'अणहिलपुर पाटन' के राज्य-सिंहासनाधिपति 'गुर्जर देश' के चौलुक्य महाराजा 'भीमदेव' (प्रथम) का मंत्री था। 'विमल' अत्यन्त कार्यदक्ष शूरवीर तथा उत्साही था। इसी कारण से महाराजा 'भीमदेव' ने उसको स्वकीय सेनाधिपति नियुक्त किया था। महाराजा 'भीमदेव' की आज्ञानुसार उसने अनेक संग्रामों में विजय-लक्ष्मी प्राप्त की थी। इसी कारण से महाराजा 'भीमदेव' उस पर सदैव प्रसन्न रहते तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

उस समय 'आबू' की पूर्व दिशा की तलेटी के बिल्कुल समीप 'चन्द्रावती' नामक एक विशाल नगरी थी। उसमें परमार 'धंधुक' नाम का नृप, गुर्जरपति 'भीमदेव' के सामंत राजा के तौर पर, शासन करता था। वह आबू तथा उसके आसपास के प्रदेश का अधिकारी था। कुछ समय के बाद 'धंधुक' राजा गुर्जर-राष्ट्र-पति से स्वतंत्र होने की इच्छा अथवा अन्य किसी कारण से महाराजा 'भीम-देव' की आज्ञाएँ उल्लंघन करने लगा। इस कार्य से 'भीम-

देव' क्रुद्ध हुआ और उसने 'धंधुक' को स्वाधीन करने के लिये एक बडी सेना के साथ 'विमल' सेनापति को 'चंद्रावती' भेजा। महासैन्य के नेता, शूरवीर सेनापति 'विमल' के आगमन के समाचार सुनते ही, परमार 'धंधुक' वहां से भागकर मालवनाथ 'धार वाले परमार भोज' (जो उस समय चित्तौड़ में रहता था) के आश्रय में जाकर रहा। महाराजा 'भीमदेव' ने 'विमल मंत्री' को 'चन्द्रावती' प्रान्त का दंडनायक नियुक्त करके उसके रक्षण का कार्य सौंपा था। तत्पश्चात् 'विमल' मंत्री ने सज्जनता से वणिक् बुद्धि द्वारा 'धंधुक' को युक्ति पूर्वक समझा कर पीछा बुलाया और राजा 'भीमदेव' के साथ उसकी सन्धि करादी।

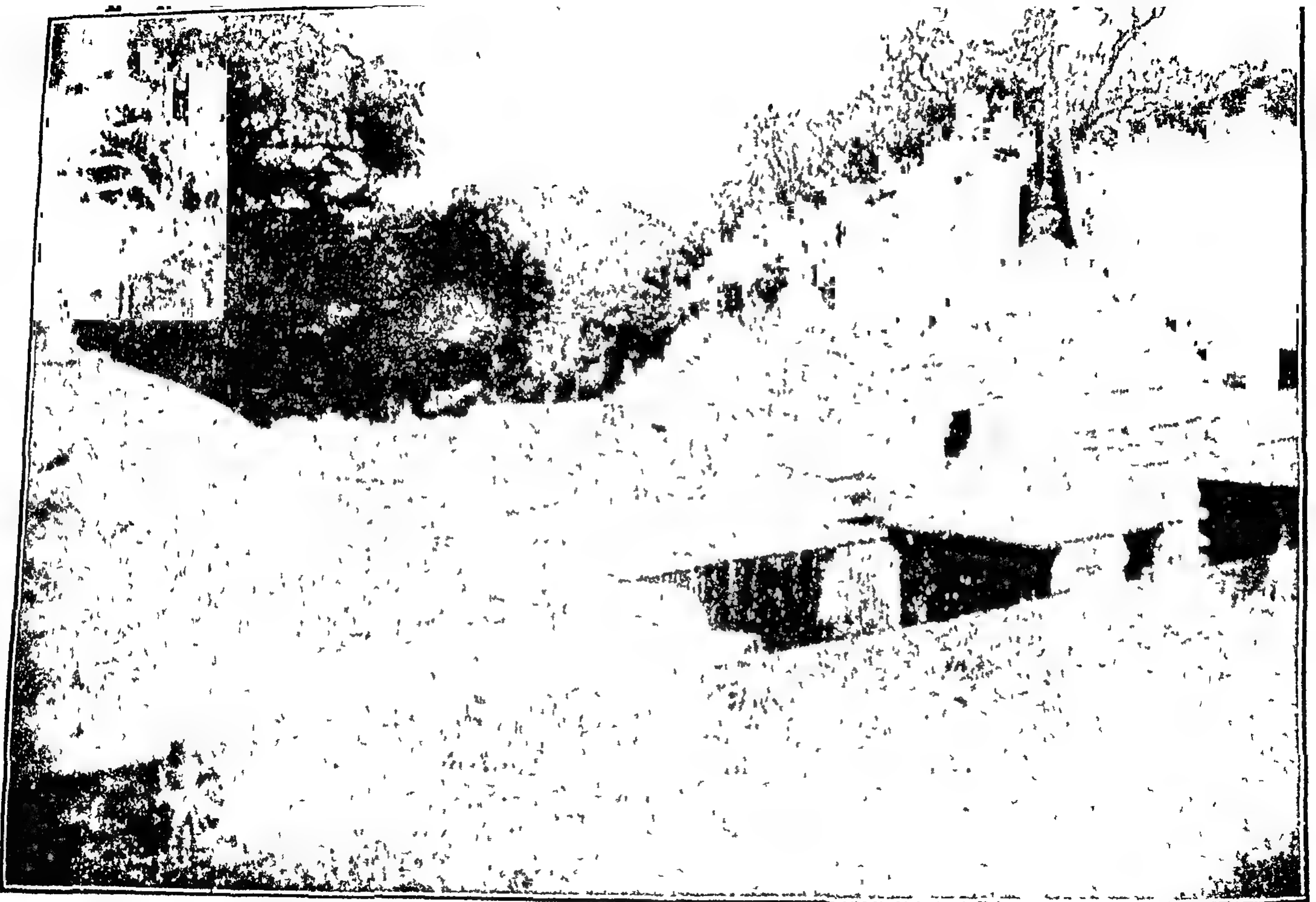
'विमल मंत्री' ने अपने पिछले जीवन में चंद्रावती और अचलगढ को ही अपना निवास-स्थान बनाया था। एक समय 'श्रीधर्मघोषसूरि' विहार करते हुए 'चन्द्रावती' पधारे। 'विमल मंत्री' ने विनती करके उनका वहा पर ही चातुर्मास कराया। 'विमल मंत्रीश्वर' पर उनके उपदेश का अपूर्व प्रभाव पड़ा। 'विमल' ने सूरिजी से प्रार्थना की कि "मैंने राज्य शासन-काल में तथा युद्धों में अनेक पाप कर्म किये हैं और अनेक प्राणियों का संहार किया है, इस कारण मैं पाप का भागी हूँ। अतएव मुझ को ऐसा प्रायश्चित

प्रदान करें कि जिससे मेरे समस्त पाप नष्ट होजावें"। सूरीश्वर ने उत्तर दिया कि—जान बूझ कर इरादापूर्वक किये हुए पापों का प्रायश्चित नहीं होता है, परन्तु तू शुद्धभाव से अत्यन्त पश्चाताप पूर्वक प्रायश्चित मांगता है, इससे मैं तेरे को प्रायश्चित देता हूँ कि "तू आबू तीर्थ का उद्धार कर"। विमल मंत्रीश्वर ने उपर्युक्त आज्ञा को सहर्ष स्वीकार किया।*

---

* 'विमल' मंत्री के पुत्र नहीं था। एक समय मंत्रीश्वर ने धर्मपत्नी के आग्रह से अट्ठम (तीन उपवास) करके श्री अंबिका देवी की आराधना की। देवी उसकी भक्ति और पुण्य के प्रभाव से तत्काल प्रसन्न हुई और तीसरे दिन की मध्य रात्रि में स्वयं आकर 'विमल' मंत्री को कहा कि—"मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ. कह! किस लिये मुझे याद किया ?" मंत्री ने उत्तर दिया कि, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई हैं तो मुझे एक पुत्र का और दूसरा आबू पर एक मन्दिर बनाने के वरदान दो"। देवी ने कहा कि, "तुम्हारा इतना पुण्य नहीं है कि दो वरदान मिलें अतएव दो में से एक इच्छित वरदान माँग"। मंत्री ने विचार कर उत्तर दिया कि "मेरी अर्धांगिनी से पूछ कर कल वर मांगूंगा"। देवी—"ठीक" ऐसा कहकर अदृश्य हो गई।

प्रातःकाल में 'विमल' ने अपनी स्त्री से सब बात कही, जिस पर उसने विचार कर कहा, "स्वामिन्! पुत्र से चिरकाल तक नाम अमर नहीं रह सकता, क्योंकि पुत्र कभी सपूत और कभी कपूत निकलते हैं, यदि कपूत निकले तो सात पीढ़ी का प्राप्त-यश नाश होजाता है। अतएव



D. J. Press, Ajmer.

विमल-वसही. ऊपरी हिस्से का दृश्य

विमलवसहि—विमल महाराजा 'भीमदेव', नृप धंधुक तथा अपने ज्येष्ठ भ्राता 'नेढ' की आज्ञा प्राप्त करके चैत्य मन्दिर—निर्माण कराने के लिये आबू पर्वत पर गये। स्थान पसन्द किया, किन्तु वहां के ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर कहा—"यह हिन्दुओं का तीर्थ है। अतएव यहां जैन मन्दिर बनाने नहीं देंगे। यदि 'पहिले यहां जैन मंदिर था' यह सिद्ध करदो तो खुशी से जैन मन्दिर बनने देंगे।" ब्राह्मणों के इस कथन को सुनकर विमल मंत्री ने अपने स्थान में जाकर अट्ठम—तीन उपवास कर अंबिका देवी की आराधना की। तीसरे दिन की मध्य रात्रि में अंबिकादेवी प्रसन्न होकर स्वप्न में विमल मंत्री को कहने लगी—'मुझे क्यों याद किया?' विमल ने सब हकीकत कही। पश्चात् अंबादेवी ने कहा—"प्रातः काल में चंपा के पेड के नीचे जहां कुंकुम का स्वस्तिक दीख पड़े वहां खुदवाना, तेरा कार्य सिद्ध होगा।" प्रातः काल में 'विमल' मंत्री स्नान कर

पुत्र के अतिरिक्त मन्दिर बनाने का वर मागो कि जिससे अपन स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्राप्त कर सकें"।

अपनी अर्धांगिनी के मुखसे यह बात सुनकर मन्त्री बहुत प्रसन्न हुआ। फिर आधी रात को देवी साक्षात् आई तिस पर मन्त्री ने मन्दिर बनाने का वर मागा। देवी यह वर देकर अपने स्थान पर गई। 'विमलप्रबन्ध' नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन दिया गया है।

सबको साथ लेकर देवी के बतलाये हुए स्थान पर गया। वहां जाकर चंपा के पेड़ के नीचे कुंकुम के स्वस्तिक वाली जगह को खुदवाने से श्री तीर्थंकर भगवान की एक मूर्त्ति निकली। सबको आश्चर्य हुआ, और यहां पहिले जैनतीर्थ था, यह निश्चित हुआ।*

अब फिर ब्राह्मणों ने कहा कि—'यह ज़मीन हमारी है। यहां पर आपको मन्दिर नहीं बनवाने देंगे। यदि 'विमल' मंत्री चाहते तो अपनी शक्ति एवं महाराजा 'भीमदेव'—की आज्ञा होने से जमीन तो क्या? लेकिन सारा आबू पर्वत स्वाधीन कर सकते थे। परन्तु उन्होंने विचार किया कि "धार्मिक कार्य में शक्ति अथवा अनुचित व्यवहार का उपयोग करना अयोग्य है।" इसलिये उन्होंने ब्राह्मणों को एकत्रित करके समझाया और कहा

* दंत कथा है कि—यह मूर्ति 'विमल' मंत्री ने मन्दिर बनवाने के पहिले एक सामान्य गम्भारे में विराजमान की थी। यह गम्भारा, इस समय विमलवसहि की भमती में बीसवीं देरी के रूप में गिना जाता है। यह मूर्ति श्रीऋषभदेव की है, किन्तु लोग इनको २० वें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी की बतलाते हैं। इस मूर्त्ति की यहां पर शुभ मुहूर्त में स्थापना होने तथा 'विमल' मंत्री ने मूलनायकजी के स्थान में स्थापन करने के लिये धातु की नई सुंदर मूर्ति कराई, इन दो कारणों से यह मूर्ति यहीं रही।

कि 'तुम इच्छानुसार द्रव्य लेकर जमीन दो।' ब्राह्मणों ने (यह समझ कर कि—अगर यह मुंह मांगी कीमत नहीं देगा तो यहाँ पर जैन मंदिर भी नहीं बनेगा) उत्तर दिया कि "सुवर्ण-मुद्रिका (अशर्फी) से नाप कर आवश्यक जमीन ले सकते हो।" विमल ने यह बात स्वीकार की और विचारा कि 'गोल सुवर्ण-मुद्रिका से नापने में बीच में जगह खाली रह जावेगी।' इसलिये उसने नवीन चौकोनी, सुवर्ण-मुद्रिकाएँ बनवाई और जमीन पर बिछाकर मन्दिर के लिये आवश्यक पृथ्वी खरीदी। जमीन की कीमत में बहुत द्रव्य मिलने से ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुए।

'विमल' मंत्रीश्वर ने उस स्थान पर अपूर्व शिल्पकला-नकाशी-युक्त; संगमरमर पत्थर का; मूल गम्भारा, गूढ मंडप, नवचौकियाँ, रंगमंडप तथा बावन जिनालयादि से सुशोभित; 'करोड़ों रुपये' के व्यय से "विमल-वसही" नामक

१ जैनों की मान्यता है कि इस मन्दिर के निर्माण कार्य में १८,५३,००,०००) अट्ठारह करोड़ तिरपन लाख रुपये लगे।

यदि एक चौरस इँच चतुकोण-चौकोनी सुवर्ण मुद्रिका का मूल्य बीस रुपये माना जावे तो विमल वसही मन्दिर में अभी जितनी भूमि रुकी है उसमें चतुकोण सुवर्ण मुद्रिकाएँ बिछाकर जमीन खरीदने में केवल भूमि की लागत ४,५३,६०,०००) चार करोड़ तिरपन लाख साठ हजार

जिन-मंदिर निर्माण कराया और इस में मूलनायकजी के स्थान पर श्रीऋषभदेव भगवान् की धातु की बड़ी व मनोहर मूर्त्ति बनवा कर स्थापित की। इस मंदिर की प्रतिष्ठा 'विमल मंत्री' ने 'वर्धमान सूरि' के कर कमलों द्वारा सं० १०८८ में कराई।[1]

रुपया होती है। तब इस श्रेष्ठ और अभूतपूर्व कलापूर्ण मंदिर के बनवाने में १८,५३,००,०००) अट्ठारह करोड़ तिरपन लाख रुपयों का व्यय होना असम्भव नहीं है।

१ विमल-प्रबंधादि ग्रंथों में वर्णन है कि 'सेनापति विमल' ने देवालय बनवाना आरम्भ किया, परन्तु व्यंतरदेव 'वालिनाह' दिन भर के काम को रात्रि में नष्ट कर देता। छः महीने तक काम चला, परन्तु प्रतिदिन का काम रात्रि में नष्ट हो जाता। मन्त्री विमल ने कार्य में होती स्खलना को देखकर अम्बिका देवी की आराधना की। देवी ने मध्य रात्रि में प्रकट होकर कहा कि "इस भूमि का अधिष्टायक-क्षेत्रपाल 'वालिनाह' मन्दिर के कार्य में विघ्न डालता है। यदि तू कल मध्य रात्रि में उसको नैवेद्यादि से संतुष्ट करेगा तो तेरा काम निर्विघ्नता पूर्वक समाप्त होगा"। दूसरे दिन मन्त्री नैवेद्यादि सामग्री लेकर मन्दिर की भूमि में गया। उसकी प्रतीक्षा में मध्य रात्रि तक वहां अकेला बैठा रहा। ठीक समय पर 'वालिनाह' भयावह रूप धारण करके आया और बलिदान मांगा। मंत्री ने प्रस्तुत सामग्री उसके सम्मुख धर दी। देव ने कहा कि 'मैं इससे संतुष्ट नहीं हूं। मुझे मद्य, माँस दे अन्यथा मैं मन्दिर बनना अशक्य कर दूँगा।' धैर्य्यशाली मंत्री ने उत्तर दिया कि 'श्रावक होने के कारण मैं मद्य माँस का बलिदान कदापि नहीं दूँगा। इच्छा हो तो नैवेद्यादि ले, नहीं तो युद्ध



विमलवसहि, मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान्

D J Press Ajmer

नेढ़ के वंशज—'विमल मंत्री' के ज्येष्ठ भ्राता 'नेढ' के 'धवल' तथा 'लालिग' नामक दो प्रतापी एवं यशस्वी पुत्र थे। वे चौलुक्य महाराजा 'भीमदेव' (प्रथम) के पुत्र महाराजा 'करणराज' के मंत्री थे। 'धवल' का पुत्र 'आणन्द' और 'लालिग' का पुत्र 'महिन्दु' अपने अपने पिताओं की भांति गुणवान् थे। ये दोनों महाराजा 'सिद्धराज जयसिंह' के मंत्री थे। मंत्री 'आणन्द' अत्यन्त प्रभाववान् था। उसकी पत्नी का नाम 'पद्मावती' था। 'पद्मावती' शीलवती, समस्त गुणों की खान तथा धर्म-कार्य में तत्पर रहने वाली परम श्राविका थी। 'आणन्द-पद्मावती' के 'पृथ्वीपाल' और 'महिन्दु' के 'हेमरथ' और 'दशरथ' नामक दो पुत्र थे। 'हेमरथ' व 'दशरथ' ने वि० सं० १२०१ में विमलवसही की दसवें नम्बर की देहरी का जीर्णोद्धार कराया और उसमें श्रीनेमिनाथ भगवान् की नूतन प्रतिमा बनवा कर

के लिये तैयार हो जा।' मंत्री ने इतना कह कर तुरत ही म्यान से तलवार निकाली और मारी गर्जना पूर्वक 'वालिनाह' पर टूट पड़ा। 'वालिनाह' मंत्री के असह्य तपस्तेज और पुण्य प्रभाव से प्रभावित हुआ और मंत्री के दिये हुवे नैवेद्य से तुष्ट होकर चला गया। मन्दिर का कार्य निर्विघ्नता पूर्वक लगा और थोड़े समय में बनकर तयार हो गया"।

मूलनायकजी के स्थान पर विराजमान की। साथ ही अपने पूर्वज 'नीना' से लेकर अपने दोनों भाइयों तक आठ व्यक्तियों की आठ मूर्त्तियाँ एक ही पाषाण में बनवा कर स्थापित कीं। उसी देहरी में हाथी सवार और घुड़-सवार मूर्त्ति का १ पट्ट है। परन्तु उस पर नामादि के अभाव से यह किस की मूर्त्ति है, यह जानना कठिन[1] है। उस देहरी के बाहर दरवाज़े पर वि० सं० १२०१ का एक बड़ा लेख खुदा हुआ है। इस लेख से 'विमल' मंत्री के वंश सम्बन्धी बहुत कुछ उपयोगी एवं जानने योग्य वृत्तान्त उपलब्ध होता है।

'पृथ्वीपाल' अत्यन्त प्रतापी, उदार और अपने पूर्वजों के नाम को देदीप्यमान करने वाले नरपुङ्गव थे। वे चौलुक्य महाराजा सिद्धराज 'जयसिंह' तथा 'कुमारपाल' के प्रधान थे। इन्होंने इन दोनों महाराजाओं की पूर्ण कृपा प्राप्त की थी। ये प्रजा-सेवा, तीर्थयात्रा, संघ-

---

१ उपर्युक्त आठ व्यक्तियों की मूर्त्तियों के निर्माता और इस देव कुलिका-देहरी का जीर्णोद्धार कराने वाले 'हेमरथ व दशरथ' ने इस अपूर्व मंदिर के निर्माता 'विमल' मंत्रीश्वर की मूर्त्ति न बनवाई हो यह असंभव मालूम होता है। इससे यह अनुमान होता है कि हाथी पर बैठी हुई मूर्त्ति 'विमलमंत्रीश्वर' की और अश्वारूढ मूर्त्ति 'दशरथ' की है।

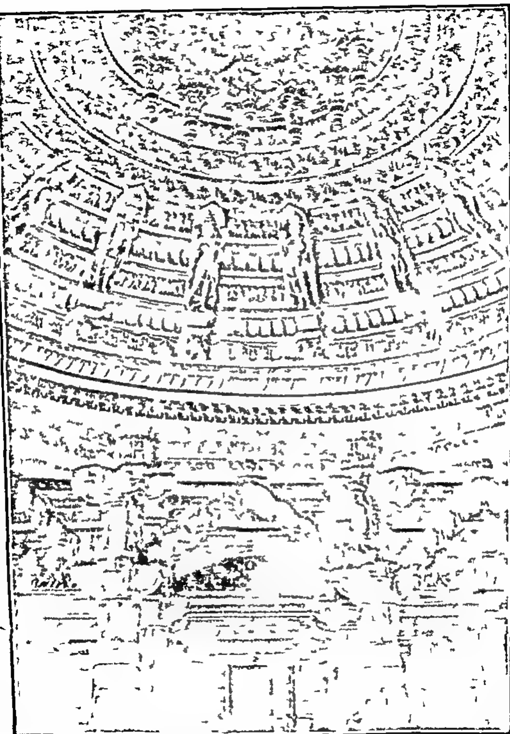
भक्ति इत्यादि धार्मिक कृत्यों में हमेशा तत्पर रहते थे। वे पूर्ण नीतिमान् और दीन-दुखियों के दुःख दूर करने वाले थे।

'पृथ्वीपाल' ने सं० १२०४ से १२०६ तक 'विमल-वसही' नामक मन्दिर की अनेक देहरियाँ आदि का जीर्णोद्धार कराया था। उस ही समय, अपने पूर्वजों की कीर्ति को शाश्वत-अमर करने के लिये, 'विमल-वसही' मन्दिर के बाहर, सामने ही एक सुन्दर 'हस्तिशाला' बनवाई। हस्तिशाला के द्वार के मुख्य भाग में 'विमल मंत्री' की घुडसवार मूर्त्ति स्थापित की। इस मूर्त्ति के दोनों तरफ तथा पीछे मिलकर कुल १० हाथी हैं। अन्तिम तीन हाथियों के अतिरिक्त शेष सात हाथी मंत्री 'पृथ्वीपाल' ने अपने पूर्वजों के नाम के वि० सं० १२०४ में बनवाये (जिन में एक हाथी खुद के नाम का भी है)। अन्तिम तीन हाथियों में के दो हाथी वि० सं० १२३७ में मंत्री 'पृथ्वीपाल' के पुत्र मंत्री 'धनपाल' ने अपने ज्येष्ठ भ्राता 'जगदेव' तथा अपने नाम के बनवाये। तीसरे हस्ति का लेख खंडित हो गया है, परन्तु वह भी मंत्री 'धनपाल' का ही बनवाया हुआ मालूम

होता है। 'धनपाल' ने भी अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करके सं० १२४५ में 'विमल-वसही' मन्दिर की कतिपय देहरियों का जीर्णोद्धार कराया। 'धनपाल' के बड़े भाई का नाम 'जगदेव' और पत्नी का नाम 'रूपिणी' (पिणाई) था। (हस्तिशाला विषयक विशेष विवरण जानने के लिये आगे हस्तिशाला का वर्णन देखें)।

यहां पर 'विमल-वसही' मन्दिर की अपूर्व शिल्पकला तथा अवर्णनीय संगमरमर की नक़्क़ाशी (बारीक खुदाई) का वर्णन करना व्यर्थ है। क्योंकि मूल गम्भारा और गूढ मंडप के अतिरिक्त अन्य सब भाग लगभग उस ही स्थिति में विद्यमान हैं। इसलिये वाचक तथा प्रेक्षक वहां जाकर साक्षात् देखकर विश्वास के अतिरिक्त अपूर्व आनन्द भी उठा सकते हैं।

यहाँ के दोनों मुख्य मन्दिरों के दर्शन करने वाले मनुष्य को अवश्य ही यह शंका होगी कि जिन मन्दिरों के बाहरी भाग अर्थात् नवचौकियाँ, रंगमंडप तथा भमती की देहरियों में इस प्रकार की अपूर्व कारीगरी का प्रदर्शन है, उन मन्दिरों के अन्दरूनी हिस्से (ख़ास तौर पर मूल गम्भारा और गूढ़मंडप) बिलकुल सादे क्यों ? शिखर



विमल वसही, मूल गभारा और सभा मडप आदि

D. J. Press Ajmer

भी बिलकुल नीचा तथा बैठे आकार का क्यों बना? उपर्युक्त शंका वास्तव में सत्य है। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि उन दोनों मन्दिरों के निर्माता मंत्रिवरों ने बाहर के भाग की अपेक्षा अन्दर के भाग अधिक सुंदर, नक्शीदार व सुशोभित बनवाये होंगे। किन्तु वि० संवत् १३६८ में मुसलमान बादशाह[1] ने इन दोनों मन्दिरों का भङ्ग किया, तब दोनों मन्दिरों के मूल गम्भारे, गूढ़ मंडप, दोनों हस्तिशालाओं की कतिपय मूर्त्तियाँ तथा तीर्थंकरों की समग्र प्रतिमाँए बिलकुल नष्ट कर दी हों और बाहरी सुंदर नक्काशी में भी थोड़ी बहुत हानि पहुँचाई हो। इस प्रकार इन दोनों मन्दिरों की हानि होने पर जीर्णोद्धार कराने वाले ने अन्दर का भाग सादा बनवाया होगा।

जीर्णोद्धार—'मांडव्यपुर' (मंडोर) निवासी 'गोसल' के पुत्र 'धनसिंह' के पुत्र 'बीजड' आदि छः भाइयों तथा 'गोसल' का भाई 'भीमा' के पुत्र 'महणसिंह' के पुत्र 'लालिगसिंह' (लल्ल) आदि तीन भाई अर्थात् बीजड' व 'लालिग' आदि नव भाइयों ने 'विमल-वसही' मन्दिर

---

1 अल्लाउद्दीन खूनी के सैन्य ने वि० सं० १३६८ में जालोर पर चढ़ाई की थी। वहां से जय प्राप्त कर वापिस आते हुए आबू पर चढ़कर उस सैन्य ने इन मन्दिरों का भङ्ग किया होगा।

का जीर्णोद्धार कराकर इसकी, वि० सं० १३७८ के ज्येष्ठ कृष्णा नवमी के शुभदिन धर्मघोषसूरि की परम्परा-गत 'ज्ञानचन्द्रसूरि' से प्रतिष्ठा करवाई। संभव है कि जीर्णोद्धार कराने वाले ने मन्दिर के बिलकुल नष्ट भ्रष्ट भाग को अपनी शक्ति के अनुसार सादा तथा नवीन बनवाया हो। यहां के लेखों से प्रकट होता है कि इस जीर्णोद्धार के वक्त कतिपय देहरियों में मूर्त्तियाँ फिर से स्थापित की गई हैं। जीर्णोद्धारक 'बीजड़' के दादा-दादी 'गोसल' 'गुणदेवी' की, तथा 'लालिग' के पिता-माता 'महणसिंह' और 'मीणलदेवी' की मूर्त्तियाँ आजकल भी इस मन्दिर के गूढ़मंडप में विद्यमान हैं [१]।

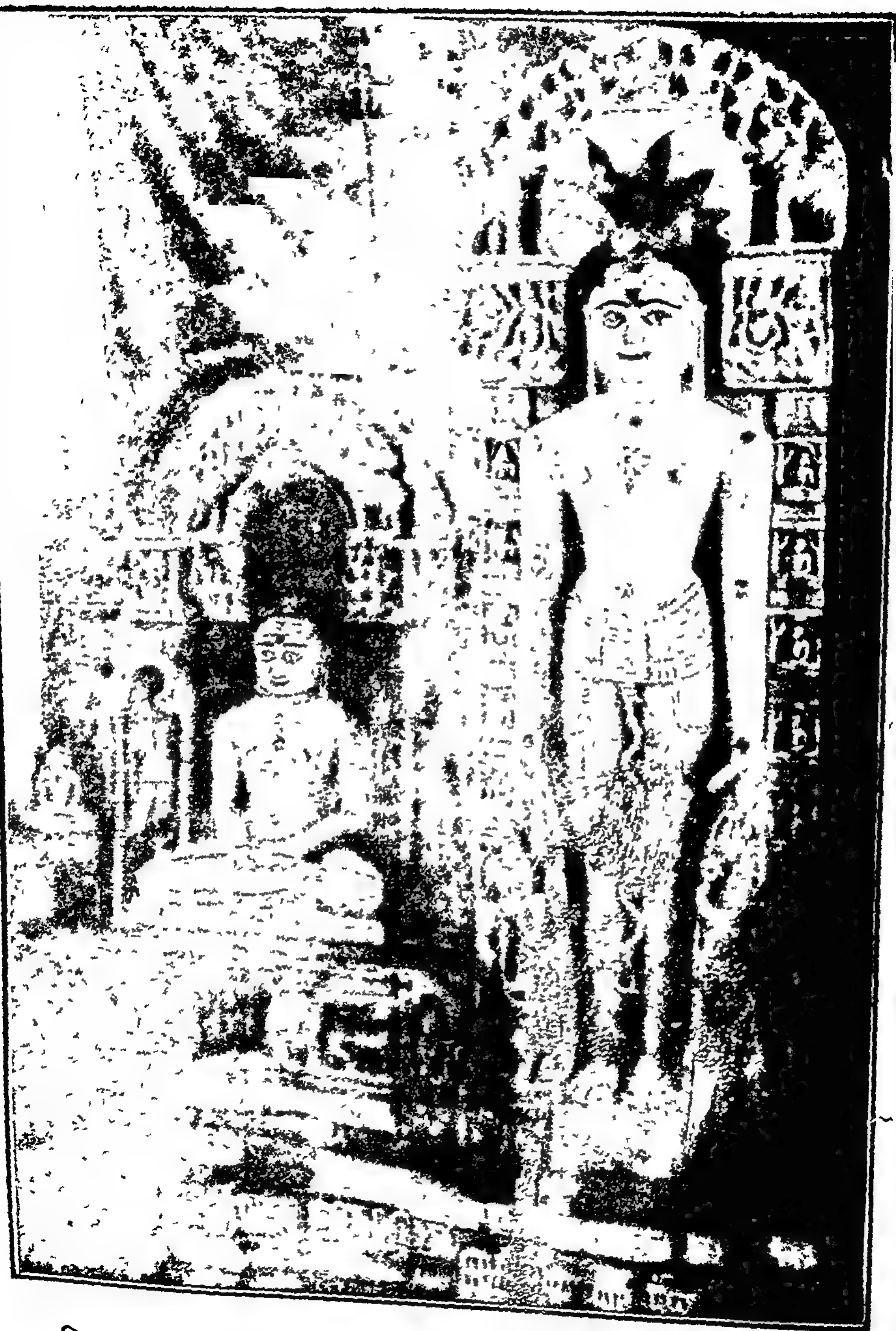
आबू पर्वत स्थित मन्दिरों के शिखर नीचे होने का मुख्य कारण यह है कि यहां पर लगभग छः छः महीने में भूकम्प हुआ करता है। इससे ऊँचे शिखर जल्दी गिर जाते हैं। मालूम होता है कि इस ही कारण से शिखर नीचे बनवाये जाते हैं। यहाँ के हिन्दू मन्दिरों के शिखर भी प्रायः जैन मन्दिरों की भाँति नीचे ही दृष्टिगत होते हैं।

१—"मूर्त्ति संख्या तथा विशेष विवरण" में गूढमंडप का विवरण देखो।



विमल-वसही, गर्भागारस्थित जगत्पूज्य-श्रीहीरविजयसूरीश्वरजी महाराज.

J. Press, Ajmer



विमल-वसही, गूढमण्डपस्थित बाँये ओर की श्रीपार्श्वनाथ भगवान
की खड़ी मूर्ति.

Press, Ajmer

मूर्त्ति संख्या तथा विशेष विवरण—

इस मन्दिर के मूल गम्भारे[१] में मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली भव्य एवं मनोहर मूर्त्ति विराजमान है। इसही मूल गम्भारे में बाँई ओर 'श्रीहीरविजय सूरीश्वर' महाराज की मनोहर मूर्त्ति है[२] †। इस मूर्त्तिपट्ट के मध्य में सूरीश्वरजी की प्रतिकृति है। उनके दोनों तरफ दो साधुओं की खड़ी, नीचे दो श्रावकों की बैठी हुई व ऊपरी भाग में भगवान् की बैठी हुई तीन मूर्त्तियाँ है। इनकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६६१ में महामहोपाध्याय श्री 'लब्धिसागरजी' ने कराई है। मूर्त्ति पर लेख है।

गूढ मंडप में पार्श्वनाथ भगवान् की काउसग्ग (कायोत्सर्ग) ध्यान में खडी दो अति मनोहर मूर्त्तियाँ हैं †। प्रत्येक मूर्त्ति पर दोनों तरफ मिलाकर कुल चौबीस जिन-मूर्त्तियाँ, दो इन्द्र, दो श्रावक और दो श्राविकाओं की मूर्त्तियाँ खुदी हुई है। दोनों के नीचे वि० सं० १४०८ के लेख हैं। धातु की बडी एकल मूर्त्तियाँ २, पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्तियाँ ३, सामान्य परिकर वाली

---

१ जैन पारिभाषिक शब्दों के अर्थों के लिये प्रथम परिशिष्ट देखें।
२ सांकेतिक चिह्नों का स्पष्टीकरण द्वितीय परिशिष्ट में देखें।

मूर्त्तियाँ ४, परिकर रहित मूर्त्तियाँ २१ और संगमरमर का चौबीसीजी का १ पट्ट है। इस पट्ट में मूलनायकजी परिकर सहित हैं और नीचे 'धर्म-चक्र' व लेख है। श्रावक की २ तथा श्राविका की ३ मूर्त्तियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) 'सा० गोसल', (२) 'सहू० सुहाग देवि', (३) 'सहू० गुणदेवि', (४) 'सा० मुहणसिंह', (५) 'सहू० मीणलदेवि ‡ (इनमें की नं० १ व ३ की मूर्त्तियाँ, इस मन्दिर का वि० सं० १३७८ में उद्धार कराने वाले श्रावक 'बीजड' ने अपने दादा-दादी 'गोसल' तथा 'गुणदेवी' की सं० १३६८ में करवाई। नम्बर ४ व ५ की सा० 'मुहणसिंह' तथा सहू० 'मीणलदेवी' की मूर्तियाँ, 'बीजड़' के साथ रहकर जीर्णोद्धार कराने वाले 'बीजड़' के काका के लड़के भाई 'लालिगसिंह' ने अपने पिता-माता की संवत् १३६८ में बनवाई)। अंबाजी की छोटी मूर्त्ति १, धातु की चौबीसी १, धातु की पंचतीर्थी २ और धातु की एकल छोटी मूर्त्तियाँ २ हैं, (अर्थात् गूढ मंडप में कुल जिन बिंब ३५, काउसग्गीआ २, चौबीसी का पट्ट १, अम्बाजी की मूर्त्ति १, श्रावक की २ और श्राविका की ३ मूर्त्तियाँ हैं)।

---

‡ ३१ व ४० वां पृष्ठ देखो।



विमल वसहि के गूढमंडप में, (१) गोसल, (२) सुहागदेवी, (३) गुणदेवी,
(४) महणसिंह, (५) मीणलदेवी।

गूढ मंडप के बाहर नव चौकियों में बाँई ओर के ताख में मूलनायक श्रीआदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्ति १, परिकर रहित मूर्त्ति १, एक ही पाषाण में श्रावक-श्राविका का युगल १ (इस युगल के नीचे अक्षर लिखे है, परन्तु पढे नहीं जाते), और एक पाषाण पट्ट है जिसके मध्य में श्राविका की मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के नीचे दोनों तरफ एक-२ श्राविका की छोटी मूर्त्ति बनी है। बीच की मूर्त्ति के नीचे 'बाराo जासल' इतने अक्षर लिखे है। (कुल दो जिनबिंब तथा श्रावक-श्राविकाओं की मूर्त्तियों के दो पट्ट हैं)।

दाहिनी ओर के ताख में मूलनायक श्री (महावीर स्वामी) आदिनाथजी की परिकर वाली मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और पाषाण में खुदा हुआ १ यंत्र है।

मूल गम्भारे के बाहर (पिछले भाग में) तीनों दिशाओं के तीनों आलों में तीर्थंकर भगवान् की परिकर वाली एक २ मूर्त्ति है।

* देहरी नं० १—में मूलनायक श्री [धर्मनाथ] आदीश्वर भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा परिकर वाली एक दूसरी मूर्त्ति है (कुल दो मूर्त्तियाँ हैं)।

* देहरी नं० २—में मूलनायक श्री (पार्श्वनाथ) अजितनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और संगमरमर का २४ जिन-माताओं का सपुत्र पट्ट १ है। इस पट्ट के ऊपरी भाग में भगवान् की ३ मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। (कुल २ मूर्त्तियाँ और १ पट्ट है)।

* देहरी नं० ३—में मूलनायक श्री (शान्तिनाथ) (शान्तिनाथ) शान्तिनाथ भगवान् की मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा भगवान् की चौबीसी का पट्ट १ (कुल २ मूर्त्तियाँ और १ पट्ट) है।

देहरी नं० ४—में मूलनायक श्रीनमिनाथजी की फणयुक्त सपरिकर मूर्त्ति १, सादी मूर्त्ति १ और १ काउसग्गीआ है। (कुल ३ मूर्त्तियाँ हैं)।

देहरी नं० ५—में मूलनायक श्री [कुंथुनाथ] अजित-

नोट—देहरियों की गणना मन्दिर के द्वार में प्रवेश करते बांई ओर से की गई है। देहरियों पर नम्बर भी खुदे हुए हैं।

नाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्ति १ है। (कुल २ मूर्त्तियाँ है)।

*देहरी नं० ६—में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) संभव-नाथ भगवान् की परिकर युक्त मूर्त्ति १ तथा परिकर रहित मूर्त्ति १ है। (कुल २ मूर्त्तियाँ है)।

*देहरी नं० ७—में मूलनायक श्री (महावीर स्वामी) शान्तिनाथजी-आदि की ४ मूर्त्तियाँ है।

देहरी नं० ८—में मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ भगवान् आदि के परिकर रहित ३ जिन बिंब और बाजू में तीनतीर्थी के परिकर वाली १ मूर्त्ति है। (कुल ४ मूर्त्तियाँ है)।

देहरी नं० ९—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] (नेमिनाथ) (पार्श्वनाथ) महावीर स्वामी आदि की ३ मूर्त्तियाँ है।

देहरी नं० १०—में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) सुमति-नाथजी की परिकर वाली मूर्त्ति १, श्री 'सीमंधर' 'युगंधर' 'बाहु' एवं 'सुबाहु', इन चार विहरमान भगवान् की परिकर युक्त चार मूर्त्तियों का पट्ट * १, तीन (अतीत, वर्त्तमान,

---

* इस पट्ट की एक बगल में इसी पाथर में ऊपरा ऊपरी श्राविका की

अनागत) चौबीसियों का संगमरमर का १ बहुत लम्बा पट्ट[1] है। संगमरमर पाषाण के एक मूर्ति पट्ट में हाथी पर हौदे में बैठे हुए श्रावक की एक मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के नीचे इस ही पट्ट में घुड़सवार श्रावक की एक छोटी मूर्त्ति बनी हुई है। दोनों के सिर पर छत्र है। इस मूर्ति पट्ट पर लेख तथा नाम का अभाव होने से यह मूर्त्ति किस व्यक्ति की है यह पता लगाना दुःशक्य है ‡। इसके पास ही संगमरमर के एक लम्बे पत्थर में आठ श्रावकों की मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। प्रत्येक मूर्त्ति के नीचे मात्र नाम ही लिखे हुए हैं। वे इस प्रकार हैं।

१—महं० श्रीनीनामूर्त्तिः॥ ('विमल' मन्त्री और उनके भाई मंत्री 'नेढ़' के वंश के पूर्वजों के मुख्य पुरुष)।

दो मूर्त्तियाँ बनी हैं। वे दोनों हाथ जोड़कर बैठी हैं, मानो चैत्यवंदन करती हों। उनके पास फूलदा। वगैरः पूजा की सामग्री है। इस पट्ट में इस प्रकार नाम लिखे हैं, ऊपर से बाएँ हाथ की तरफ—

(१) समिंधर सामि॥ (२) जुगंधर सामि॥
(३) बाहु तीर्थंगर॥ (४) महाबाहु तीर्थंगर॥

ऊपर की श्राविका पर— सोहिणि॥

नीचे की श्राविका पर— अभयासिरि॥

१ इन तीनों चौबीसियों के प्रत्येक भगवान् की मूर्त्ति के नीचे उन २ भगवानों के नाम लिखे हैं।

‡ देखो पृष्ठ ३६ और उसके नीचे का नोट।



विमल-वसही, देहरी १०—विमल मन्त्री और उनके पूर्वज आदि

D J Press Ajmer

२–महं० श्रीलहरमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'नीना' (नीन्नक) का पुत्र)।

३–महं० श्रीवीरमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'लहर' के वंश में लगभग २०० वर्ष बाद का मन्त्री)।

४–महं० श्रीनेट (ढ) मूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'वीर' का पुत्र और 'विमल' मन्त्री का वडा भाई)।

५–महं० श्रीलालिगमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'नेढ' का पुत्र)।

६–महं० श्रीमहिंदुय (क) मूर्त्तिः ॥(मन्त्री 'लालिग' का पुत्र)।

७–हेमरथमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'महिंदुक' का पुत्र)।

८–दशरथमूर्त्तिः ॥ (मन्त्री 'महिंदुक' का पुत्र और 'हेमरथ' का छोटा भाई)।

(श्रीप्राग्वाट ज्ञातीय 'हेमरथ' तथा 'दशरथ' नामक दो भाइयों ने दसवें नम्बर की देहरी का जीर्णोद्धार कराया। देहरी के द्वार पर वि० संवत् १२०१ का वडा लेख है। विशेष वर्णन के लिये देखो पृष्ठ ३५-३६)। इस देवकुलिका में कुल १ मूर्त्ति और उपर्युक्त ४ मूर्त्ति–पट्ट हैं।

* देहरी नं० ११—में मूलनायक श्री (मुनिसुव्रत) शांतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के परिकर युक्त मूर्त्तियाँ २, सादी मूर्त्तियाँ ३ (कुल ६ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० १२—में मूलनायक श्री (नेमिनाथ) (शांतिनाथ) महावीरस्वामी की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और सादी मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्तियाँ) हैं।

देहरी नं० १३—में मूलनायक श्री (वासुपूज्य) चन्द्रप्रभ भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १, सादे परिकर वाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्तियाँ ४ और श्री आदिनाथ भगवान् के चरण-पादुका जोड़ १ (कुल ६ जिन मूर्त्तियाँ और १ जोड़ चरण-पादुका) है।

देहरी नं० १४—मूलनायक श्री (आदीश्वरजी) आदिनाथ भगवानादि के जिनबिंब ६ और हाथी पर बैठे हुए श्रावक की १ मूर्त्ति है [1]।

---

१ श्रावक की यह मूर्त्ति देहरी में सीधे हाथ की दीवार में लगी है, और संगमरमर पाषाण में बैठे हाथी पर बैठी हुई खुदी है। एक हाथ में फल और दूसरे में फूल की माला है। शरीर पर अंगरखा का चिह्न है। मूर्त्ति पर लेख नहीं है। परन्तु देहरी पर लेख है। इस लेख से मालूम होता है कि—यह मूर्त्ति इस देहरी का जीर्णोद्धार कराने वाले जयना अथवा उसके काका रामा की होनी चाहिये।

देहरी नं० १५—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) (शांतिनाथ)...... भगवान् की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १, सादे परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्तियाँ २ है, (कुल ४ जिन मूर्त्तियाँ हैं)।

देहरी नं० १६—में मूलनायक श्रीशांतिनाथ भगवान् ी परिकर वाली मूर्त्ति १, परिकर रहित मूर्त्तियाँ ४ और ंगमरमर में बने हुए एक वृक्ष के नीचे कमल पर बैठी ुई पद्मासन वाली १ मूर्त्ति बनी हुई है; जिसपर लेख नहीं । मूर्त्ति के एक तरफ श्रावक तथा दूसरी तरफ श्राविका ाथ में पूजा का सामान लेकर खडी है। सम्भव है कि यह िम्ब पुण्डरीक स्वामी का हो। (कुल जिनबिम्ब ६ और क्त रचना का पट्ट १ हैं)।

देहरी नं० १७—में समवसरण की सुंदर रचना, क्काशी युक्त संगमरमर की बनी है; जिसमें मूलनायक ौमुखजी-(१) महावीर, (२) ..., (३) आदिनाथ ौर (४) चंद्रप्रभ स्वामी है, (कुल चार मूर्त्तियाँ है)।

इस देहरी के बाहर भी एक छोटे समवसरण की रचना है। इसमें पहिले तीन गढ है, इसके ऊपर चौमुखी स्वरूप ार मूर्त्तियाँ और ऊपर शिखर युक्त देहरी का आकार ंगमरमर के एक ही पत्थर में बना हुआ है।

देहरी नं० १८—में मूलनायक श्री श्रेयांसनाथ भग
वानादि के तीन जिनविम्ब हैं। इस देहरी का बाहरी गुम्ब
और द्वार आदि सब नये बने हुए हैं।

इस देहरी के बाद दो खाली कोठड़ियाँ हैं; जिनमें
मन्दिर का फुटकर सामान रहता है।

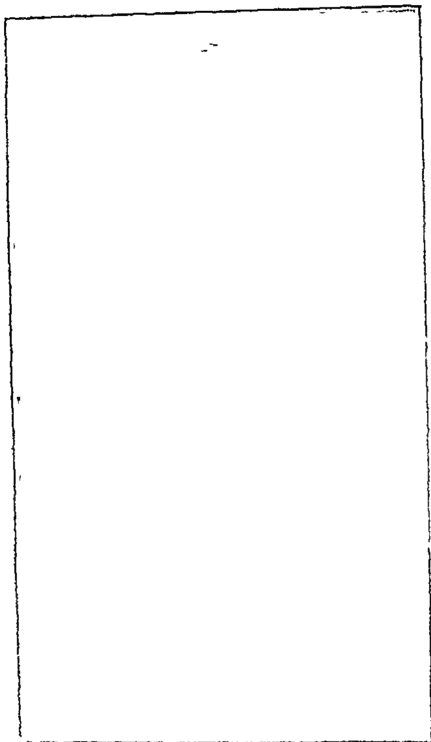
देहरी नं० १९—में परिकर रहित मूलनायक श्री
आदिनाथ भगवानादि के जिनविम्ब ७ और सादे परिकर
वाले २, कुल ९ जिनविम्ब हैं।

इसी देहरी के बाहर दीवार में एक आला है; जिसमें
तीनतीर्थी और सर्प फन के परिकर वाली एक प्रतिमा है।

देहरी नं० २०—के स्थान में श्री ऋषभदेव भगवान्
का बड़ा गम्भारा है; जिसमें मूलनायक श्रीऋषभदेव [1]

---

[1] इस मूर्त्ति के दोनों कंधों पर चोटी का चिह्न होने से दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि यह प्रतिमा श्री मुनिसुव्रतस्वामी की नहीं किन्तु श्री ऋषभदेव भगवान् की है। बैठक पर लंछन के अभाव, श्यामवर्ण, और कंधे पर रहे हुए चोटी के चिह्न की तरफ ध्यान नहीं पहुंचने आदि कारणों से लोग इस मूर्त्ति को 'श्रीमुनिसुव्रत स्वामी की मूर्त्ति' मानते हैं। वास्तव में यह भ्रमणा है। अब से इस मूर्त्ति को श्री 'ऋषभदेव भगवान्' ही की मूर्त्ति मानना चाहिये। दंत कथा है कि—'अम्बिका देवी' ने 'विमल' मंत्री को स्वप्न



भगवान् की श्याम वर्ण की बड़ी और प्राचीन प्रतिमा १, तीन गढ की सुंदर रचना वाले[1] समवसरण में परिकर वाले चौमुखी स्वरूप जिन बिम्ब ४, उत्कृष्टकालीन १७० तीर्थंकरों का पट्ट १, एक एक चौवीसी के पट्ट २, पंचतीर्थी के परिकर वाली प्रतिमा १, सादे परिकर वाले जिनबिम्ब ४, बिना परिकर के जिनबिम्ब १५, चौबीसी के पट्ट से जुदे हुए छोटे जिनबिम्ब ६, पाट पर बैठे हुए आचार्य की बडी मूर्त्ति १ (इस मूर्त्ति के दोनों कानों के पीछे ओघा, दाहिने कंधे पर मुंहपत्ति, एक हाथ में माला और शरीर पर कपडे के चिह्न बने है। इस पट्ट में दोनों तरफ हाथ जोडे हुए श्रावक की एक २ खड़ी मूर्त्ति बनी है; जिनके

देकर यह मूर्त्ति लगभग वि० सं० १०८० में भूमि से प्रकट करवाई। इस मूर्त्ति का निर्माण काल चतुर्थ आरा (करीब २८६० वर्ष पूर्व) कहा जाता है। 'विमलशाह' ने मंदिर निर्माण कराते समय सब से पहिले इस ही गम्भारे को बनवाया, जिसमें इस मूर्त्ति को विराजमान किया। तत्पश्चात् 'विमल' ने मूलनायकजी के स्थान में स्थापित करने के उद्देश से धातु की एक अति रमणीय और बडी मूर्त्ति बनवाई जिससे वह मूर्त्ति इस ही गम्भारे में रही।

१ इस समवसरण में नियमानुसार प्रथम गढ (किला) में वाहन (सवारियाँ), दूसरे गढ में उपदेश सुनने के लिये आये हुए पशुओं, तीसरे गढ में देव व मनुष्यों की बारह पर्षदा, बारह दरवाजे, गढ के कांगड़े और ऊपर देहरी की आकृति आदि की रचना बहुत सुंदर रीति से बनाई है।

नीचे—'सा० सूरा। सा० बाला' नाम खुदे हैं। आचार्य की इस मूर्त्ति के लेख से प्रकट होता है कि उपर्युक्त दोनों श्रावकों ने, धर्मघोष सूरि के शिष्य आनंद सूरि—अमर प्रभसूरि के शिष्य ज्ञानचंद्रसूरि के शिष्य 'श्री मुनिशेखर सूरि' की यह मूर्त्ति वि० सं० १३६६ में बनवाई), आचार्य की बिना नाम की हाथ जोड़े बैठी हुई छोटी मूर्त्ति १ (इस मूर्त्ति में भी ऊपर की तरह कानों के पीछे ओघा, शरीर पर कपड़े का देखाव और हाथ में मुँहपत्ति है), श्रावक-श्राविका के बिना नाम के बड़े युगल २, हाथ जोड़े हुए श्रावक की खड़ी छोटी मूर्त्ति १, हाथ जोड़े बैठी हुई श्राविका की छोटी मूर्त्ति १, अंबिका देवी की छोटी मूर्त्ति १, भूमिगृह—तलघर से निकली हुई अंबिका देवी की धातु की सुन्दर मूर्त्ति १, यक्ष की मूर्त्तियाँ २, भैरव—क्षेत्रपाल की मूर्त्ति १ और परिकर से पृथक् हुई इन्द्र की मूर्त्ति १ है। [इस गम्भारे में कुल पंचतीर्थी के परिकर युक्त मूर्त्ति १, सादे परिकर युक्त मूर्त्तियाँ ४, मूलनायकजी सहित बिना परिकर के जिनबिंब १६, बिलकुल छोटी जिनमूर्त्तियाँ ६, चार जिनबिंब युक्त समवसरण १, १७० जिनपट्ट १, चौबीसी जिनपट्ट ३, आचार्य मूर्त्ति २, श्रावक-श्राविका



विमलवसहि, श्री अम्बिका देवी

D. J. Press, Ajmer.

के युगल २, श्रावक मूर्त्ति १, श्राविका मूर्त्ति १, अंबिका देवी की मूर्त्ति २ (संगमरमर की १ और धातु की १), इन्द्रमूर्त्ति १, यक्षमूर्त्ति २ और भैरवजी (क्षेत्रपाल) की मूर्त्ति १ है]।

देहरी नं० २१—(उपर्युक्त गम्भारे के पास की देहरी) में अंबिका देवी की चार मूर्त्तियाँ हैं, जिनमें की मूल मूर्त्ति † बड़ी और मनोहर है। इसके नीचे लेख है। इस मूर्त्ति को वि० सं० १३९४ में 'विमल' मंत्री के वंशगत 'मंडण (माणक)' ने बनवाई, इस मूर्त्ति और बाँई ओर की अंबिका देवी की छोटी मूर्त्ति के मस्तक पर भगवान् की एक एक मूर्त्ति बनी है।

देहरी नं० २२—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] आदिनाथजी की तीनतीर्थी के परिकरवाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है। इस देहरी का सारा बाहरी भाग नया बना हुआ है।

* देहरी नं० २३—में मूलनायक श्री [आदिनाथ] (पद्मप्रभ) नेमिनाथ भगवान् सहित सादे परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ३६—में मूलनायक श्री (धर्मनाथ) शांतिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियां २ (कुल ३ मूर्त्तियां) हैं।

देहरी नं० ३७—में मूलनायक श्री (शीतलनाथ) पार्श्वनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

*देहरी नं० ३८—में मूलनायक श्री (शांतिनाथ) आदिनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० ३९—में मूलनायक श्री (कुंथुनाथ) कुंथुनाथ भगवान् सहित परिकर वाली मूर्त्तियाँ २ और तीन-तीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ४०—में मूलनायक श्री (मल्लिनाथ) (सुमतिनाथ) विमलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

*देहरी नं० ४१—में मूलनायक श्री (वासुपूज्य) शाश्वता वारिषेणजी की परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल मूर्त्तियाँ ३) हैं।



विमल-वसही, देहरी ४४,

* देहरी नं० ४२—में मूलनायक श्री [अजितनाथ] (आदिनाथ) आदिनाथ भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ एवं सादी मूर्त्तियॉ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

* देहरी नं० ४३—में मूलनायक श्री [नेमिनाथ] ....भगवान् सहित सादे परिकर वाली मूर्त्तियॉ २ एवं पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

* देहरी नं० ४४—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] पार्श्वनाथ भगवान् की अति सुन्दर नक्काशीदार तोरण † और परिकर वाली मूर्त्ति १ तथा सादे परिकर वाली मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियॉ) है।

देहरी नं० ४५—में मूलनायक श्री (नमिनाथ) (शांतिनाथ) आदिनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक्काशी-दार तोरण† एवं परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ४६—में मूलनायक श्री [मुनिसुव्रत] (अजितनाथ) धर्मनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित प्रतिमाएँ २ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) हैं।

देहरी नं० ४७—में मूलनायक श्री [महावीर] (शांतिनाथ) अनंतनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक्काशी-दार तोरण † और पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

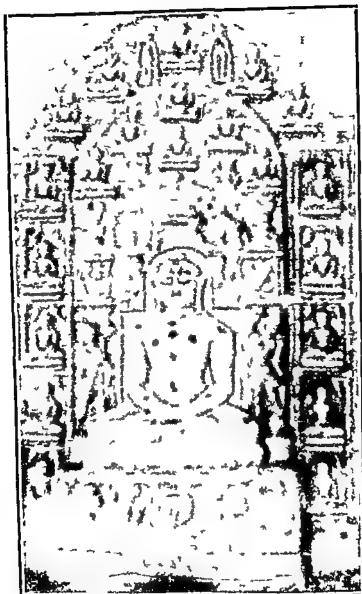
*देहरी नं० ४८—में मूलनायक श्री [अजितनाथ] सुमतिनाथ भगवान् सहित परिकर वाली प्रतिमाएँ २ तथा परिकर रहित मूर्त्ति १ (कुल ३ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ४९—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] अजितनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ है। बाँईं ओर परिकर वाली एक दूसरी मूर्त्ति है; जिसके परिकर में सुंदररीत्या भगवान् की २३ मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। इसलिये इसको चौबीसी का पट्ट कह सकते हैं। परन्तु इस पट्ट के मूलनायकजी की मूर्त्ति बड़ी और परिकर से भिन्न है (कुल मूर्त्ति १ और उपर्युक्त पट्ट १ है)।

देहरी नं० ५०—में मूलनायक श्री [विमलनाथ] महावीरस्वामी की परिकर वाली मूर्त्ति १ है।

देहरी नं० ५१—में मूलनायक श्री [आदिनाथ].... भगवान् की तीनतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और बिना परिकर की मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियाँ) है।

*देहरी नं० ५२—में मूलनायक श्री [महावीर] महावीरस्वामी की पंचतीर्थी के परिकर वाली मूर्त्ति १ और परिकर रहित मूर्त्ति १ (कुल २ मूर्त्तियाँ) है।



विमल-वसही, देहरी ४६—चतुर्विंशति जिन पट्ट,
(जिन चौवीशी)

*देहरी नं० ५३—में मूलनायक श्री शीतलनाथ भगवान् की परिकर वाली मूर्त्ति १ और विना परिकर की मूर्त्तियाँ २ (कुल ३ मूर्त्तियां) हैं।

*देहरी नं० ५४—में मूलनायक श्री [पार्श्वनाथ] आदिनाथ भगवान् की अत्यन्त सुंदर नक्काशीदार तोरण के स्थंभ † (ऊपर का तोरण नहीं है) और तीनतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्ति १ है।

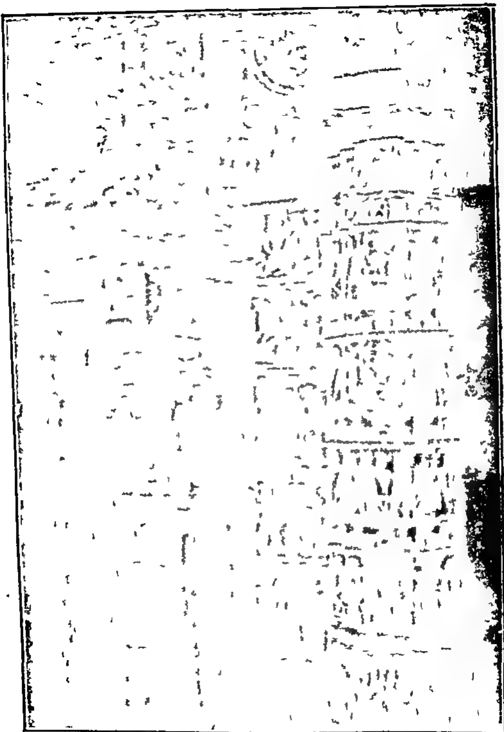
इस मंदिर में कुल मूर्त्तियाँ इस प्रकार हैः—

१७ पंचतीर्थी के परिकर सहित मूर्त्तियाँ।
११ त्रितीर्थी ,, ,, ,, ,,
६० सादे ,, ,, ,,
१३६ परिकर रहित मूर्त्तियाँ।
२ धातु की बड़ी एकल प्रतिमा।
२ बड़े काउसग्गिये।
१ छोटा काउसग्गिया, परिकर से जुदा हुआ।
१ एक सौ सत्तर जिन का पट्ट।
१ तीन चौवीसी का पट्ट।
७ एक चौवीसी के पट्ट।
१ जिन-माता चौवीसी का पट्ट।

दृश्यों की रचना—

(१) विमलवसही के गूढ़मंडप के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर, दरवाज़े और बाँए ताक़ के बीच की दीवार की नक़्क़ाशी के सर्वोच्च भाग में (प्रथम खण्ड में), एक श्रावक भगवान् की ओर बैठकर चैत्यवंदन कर रहा है। पास ही में एक श्राविका हाथ जोड़कर खड़ी है, जिसके पास एक अन्य श्राविका खड़ी है। दूसरे खण्ड में दो श्रावक हैं; जिनके हाथ में पुष्पमालाएँ हैं। तीसरे खण्ड में आचार्य महाराज आसन पर बैठकर उपदेश दे रहे हैं। पास में ठवणी (स्थापना) रक्खी है। इसके नीचे के चारों खण्डों में यथाक्रम तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं।

(२) वहीं मुख्य द्वार और दाहिने ताक़ के बीच की दीवार में सबसे ऊपर (प्रथम खण्ड में) एक श्राविका हाथ जोड़कर खड़ी है। उसके पास ही एक श्रावक खड़ा है। दूसरे खण्ड में पुष्पमाला युक्त दो श्रावक और एक अन्य श्रावक हाथ जोड़कर खड़ा है। तीसरे खण्ड में गुरु महाराज दो शि[illegible] कराते हुए मस्तक पर वासक्षेप डाल रहे[illegible] नम्र



विमल वसहि, दृश्य-१



विमल-वसही, दृश्य-२

भाव से, मस्तक झुकाकर वासचेप डलवा रहे हैं। गुरु महाराज उच्च आसन पर बैठे हैं, सामने उनके मुख्य शिष्य छोटे आसन पर बैठे हैं। बीच में पट्टे पर ठवणी (स्थापना-चार्य्य) है। इसके नीचे के चारों खण्डों में पूर्ववत् ही तीन साधु, तीन साध्वियाँ, तीन श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं।

(३) नवचौकी के पहिले खण्ड के मध्यवर्ती (मुख्य दरवाजे के निकट के) गुम्बज की छत के नीचे की गोल पंक्ति में एक ओर भगवान् काउसग्ग ध्यान में स्थित हैं। आस पास श्रावक कुंभ, पुष्पमाला आदि पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। दूसरी ओर आचार्य महाराज आसन पर विराजमान हैं। एक शिष्य साष्टांग नमस्कार कर रहा है। अन्य श्रावक हाथ जोडकर उपस्थित हैं। अवशिष्ट भाग में गीत, नृत्य, वादित्र आदि के पात्र खुदे हैं।

(४) नवचौकी में दाहिनी ओर के तीसरे गुम्बज की छत के एक कोने में अभिषेक सहित लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति बनी हुई है। उसी गुम्बज के दूसरे कोने में दो हाथियों के युद्ध का दृश्य बना है।

(५) नवचौकी के पास के बड़े रंगमंडप में बीच के बड़े गोल गुम्बज़ में प्रत्येक स्थम्भ पर भिन्न २

आयुध-शस्त्र और नाना प्रकार के वाहनों से सुशोभित षोडश (सोलह) विद्यादेवियों* की अत्यन्त रमणीय १६ खड़ी मूर्त्तियाँ हैं।

(५ Aए) रंगमंडप और दाहिने हाथ की (उत्तर दिशा की) भमती के बीच के गुम्बजों में से रंगमंडप के पास के बीच के गुम्बज़ में सरस्वती देवी की सुन्दर मूर्त्ति खुदी है।

(५ Bबी) उसके सामने ही-रंगमंडप और दक्षिण दिशा की भमती के बीच के गुम्बजों में से, रंगमंडप के पास के बीच के गुम्बज़ में लक्ष्मी देवी की सुन्दर मूर्त्ति खुदी है।

(५ Cसी) मध्यवर्ती बड़े रंगमंडप के नैऋत्य कोण के बीच में अंबिकादेवी की सुन्दर मूर्त्ति बनी है। शेष तीन कोने में भी बीच में अन्य देव-देवियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं।

(६) मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार और रंगमंडप के बीच के, नीचे के मध्य गुम्बज़ के बड़े खण्ड में भरत बाहुबली के

* १ रोहिणी, २ प्रज्ञप्ति, ३ वज्रश्रृंखला, ४ वज्रांकुशी, ५ अप्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी), ६ पुरुषदत्ता, ७ काली, ८ महाकाली, ९ गौरी, १० गांधारी, ११ सर्वास्त्रा महाज्वाला, १२ मानवी, १३ वैरोट्या, १४ अच्छुप्ता, १५ मानसी और १६ महामानसी, ये सोलह विद्या देवियाँ हैं।



विमल-वसही का बड़ा सभा मंडप, १६ विद्या देवियाँ—दृश्य ५

B. J. Press Ajmer

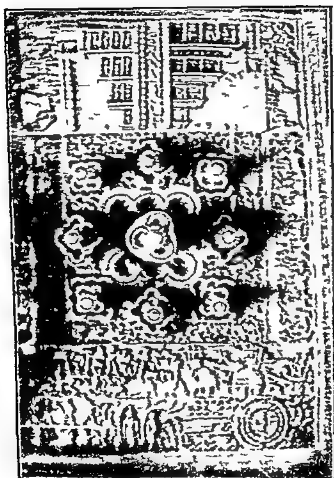
युद्ध का दृश्य ‡ है। उस दृश्य के आरंभ में एक ओर अयोध्या और दूसरी ओर तक्षशिला नगरी है। दोनों के बीच में वेल का दिखाव बनाकर दोनों को जुदा जुदा प्रदर्शित किया है। उसमें इस प्रकार नाम वगैरह लिखे हैः—

‡ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् के भरत–बाहुबलि आदि एकसौ पुत्र और ब्राह्मी तथा सुन्दरी ये दो पुत्रियाँ थीं। दीक्षा अङ्गीकार करते समय भगवान् ने भरत को अयोध्या, बाहुबलि को तक्षशिला और शेष पुत्रों को भिन्न भिन्न देशों के शासक नियुक्त किये। आदिनाथ भगवान् के चारित्र–दीक्षा ग्रहण करने के बाद भगवान् के ६८ लघु पुत्र तथा ब्राह्मी एव सुन्दरी ने भी सर्व विरति चारित्र स्वीकार किया था। तत्पश्चात् किसी प्रधान कारण से भरत और बाहुबलि इन दोनों मे परस्पर महा युद्ध आरम्भ हुआ। लोगों–सैनिकों का सहार न हो, इस वस्तु तत्त्व को ध्यान में लेकर उन दोनों भाइयों ने सैन्यों की लड़ाई बन्द करदी। और दोनों ने स्वय परस्पर छ प्रकार के द्वन्द युद्ध किये। भरत, चक्रवर्ति होते हुए भी, बाहुबलि के शरीर का बल विशेष होने से बाहुबलि ने सब युद्धों में विजय प्राप्त की। तो भी भरत चक्रवर्ति ने विशेष युद्ध करने की इच्छा से पुन बाहुबलि पर एक बार मुष्टि प्रहार किया। इस पर बाहुबलि ने भी भरत को मारने के लिये मुठ्ठी ऊँची की। परन्तु विचार हुआ कि—' मैं यह क्या अनर्थ कर रहा हूँ? ज्येष्ठ भ्राता का वध करने को उद्यत हुआ हूँ?।" इस प्रकार वैराग्य उत्पन्न होने से उन्होंने उसी समय दीक्षा अङ्गीकार की। अर्थात् उठाई हुई मुठ्ठी द्वारा अपने मस्तक के केशों का लुञ्चन कर लिया। भरत राजा ने, उनको नमस्कार कर प्रशसा की और उनके–बाहुबलि के बड़े लड़के को गादी पर बैठा कर आप अयोध्या पधारे। अब

(६ A ए) पहिले अयोध्या नगरी की तरफ 'श्रीभरथेश्वरसत्का विनीताभिधाना राजधानी' (श्रीभरत चक्रवर्ति की अयोध्या नाम की राजधानी)। 'भग्नी बांभी' (वहिन ब्राह्मी)। 'माता सुमंगला' (सुमंगला माता)। पालकी में वैठी हुई स्त्रियों पर 'समस्त अंतःपुर' (सारा जनान खाना)। पालकी में वैठी हुई स्त्री पर 'सुन्दरी स्त्रीरत्न' (स्त्रीरत्न सुन्दरी)। दरवाजे पर 'प्रतोली' (दरवाजा)। पश्चात् लड़ाई के लिये अयोध्या से सेना रवाना होती है।

बाहुबलि को विचार आया कि छोटे ६८ भ्राताओं ने पहिले दीक्षा ग्रहण की है। इसलिये उनको वंदन करना होगा। अतः केवल ज्ञान प्राप्त करके ही भगवान् के समीप जाऊँ, जिससे छोटे भाइयों को वंदन करना न पड़े। इस विचार से वाहुवलि मुनि ने उसी स्थान पर एक वर्ष तक कायोत्सर्ग किया। हमेशा उपवास के साथ ही साथ नाना प्रकार के कष्ट सहन किये। परन्तु केवल ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। तत्पश्चात् उनकी सांसारिक भगिनियाँ साध्वी–ब्राह्मी और सुन्दरी आकर उपदेश देने लगीं कि—"हे भाई! हाथी पर सवार होने से केवल ज्ञान नहीं होता है।" बाहुबलि तुरन्त ही समझ गये और छोटे भाइयों को वन्दना करने के लिये, अभिमान स्वरूप हाथी का त्याग करके ज्योंही पैर आगे बढ़ाया, कि उसी समय केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। फिर वे भगवान् के समवसरण में गये और वहां पर केवलियों की पर्षदा में बैठे। तत्पश्चात् भगवान् के साथ ही शिवमन्दिर–मोक्ष में गये।

बहुत वर्षों तक भरत चक्रवर्ति के राज्य को भोगने के बाद एक दिन भरत राजा समग्र वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आरीसाभवन में पधारे।



विमलवसहि, भरत बाहुबलि युद्ध-दृश्य १

D J Press, Ajmer

इस दृश्य में एक हाथी के ऊपर 'पाटहस्ति विजयगिरि' (पट्ट-हस्ति विजयगिरि) इसके ऊपर लड़ाई के वेष में सज्ज होकर बैठे हुए मनुष्य पर 'महामात्य मतिसागर' (महामंत्री मतिसागर)। लड़ाई के वस्त्र धारण करके हाथी पर बैठे हुए पुरुष पर 'सेनापति सुसेन' (सुषेण सेनापति) और युद्ध की पोशाक पहन कर रथ में बैठे हुए मनुष्य पर 'श्रीभरथेश्वरस्य' (श्रीभरत चक्रवर्ती) वगैरह नाम लिखे हुवे हैं। तत्पश्चात् हाथी, घोडे और सैन्य की पंक्तियां खुदी हुई है।

(६ B वी) तक्षशिला नगरी की ओर 'बाहुबलिसत्का तक्षशिलाभिधाना राजधानी' (बाहुबलि की तक्षशिला नाम की राजधानी), और 'पुत्री जसोमती' (यशोमती पुत्री) लिखा है। इसके बाद तक्षशिला नगरी में से सैन्य युद्ध करने के लिये बाहर निकलने का दृश्य है। उसमें 'सिंहरथ सेनापति'

उस भवन में अपना रूप देखते समय उनके हाथ की उँगली में से अँगुठी (वींटी) के गिरजाने से उगली शोभाहीन प्रतीत हुई। क्रमानुसार सर्व आभूषणों के उतारने पर शरीर की शोभा में न्यूनता प्राप्त हुई। उसी समय वैराग्य रगमें तल्लीन होकर 'यह सब बाह्य शोभा है' इस प्रकार शुभ भावना करते २ केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। शासनदेवी ने आकर साधु का वेष दिया। भरत राजर्षि ने उस वेष को ग्रहण कर के वर्षों तक विचरण किया और अनेक प्राणियों को प्रतिबोध करके, आयुष्य पूर्ण होने पर मोक्ष में गये। उनके अन्य ९८ बन्धु व दोनों भगनियाँ भी मोक्ष में गईं।

(सेनापति सिंहरथ)। लड़ाई के वस्त्र पहन कर हाथी पर बैठे हुए मनुष्य पर 'कुमर सोमजस' (कुमार सोमयश)। युद्धके कपड़े पहन कर हाथी पर बैठे हुए आदमी पर 'मंत्री बहुलमति' (मंत्री बहुलमति)। पालकी में बैठी हुई स्त्रियों पर 'अन्तःपुर' (जनान खाना)। पालकी में बैठी हुई स्त्री पर 'सुभद्रा स्त्रीरत्न' (स्त्री रत्न सुभद्रा)। इसके बाद हाथी घोड़ादि सैन्य की पङ्क्तियाँ खुदी हुई हैं। कोई आदमी लड़ाई के वेष में सुसज्जित होकर रथ में बैठा है, उसपर लिखा हुवा नाम पढ़ा नहीं जाता है। परन्तु वह शायद बाहुबलि स्वयं बैठे हों, ऐसा मालूम होता है।

(६ C सी) पश्चात् रणक्षेत्र में एक मृत मनुष्य पर 'अनिलवेगः' । लड़ाई के वेष में घोड़े पर बैठा हुआ मनुष्य पर 'सेनापति सीहरथ'। युद्ध की पोशाक में रथ में बैठे हुए मनुष्य पर 'रथारूढो भरथेश्वरस्य विद्याधर अनिलवेग' (भरत राजा का रथ में बैठा हुआ अनिलवेग विद्याधर) विमान में बैठे हुए आदमी पर 'अनिलवेगः'। हाथी पर 'पाटहस्ति विजयगिरि'। उस हाथी पर बैठे हुए मनुष्य पर 'आदित्यजशः'। घोड़े पर बैठे हुए मनुष्य पर 'सुवेग दूतः'। इत्यादि लिखा है।

(६ D डी) उसके बादकी दो पंक्तियों में भरत-बाहुबलि का छः प्रकार का द्वन्द युद्ध खुदा हुआ है। उसमें इस प्रकार लिखा है:—

"भरथेश्वर वाहुवलि दृष्टियुद्ध। भरथेश्वर वाहुवलि वाकयुद्ध। भरथेश्वर वाहुवलि बाहुयुद्ध। भरथेश्वर वाहुवलि मुष्टियुद्ध। भरथेश्वर वाहुवलि दंडयुद्ध। भरथेश्वर वाहुवलि चक्रयुद्ध।"

(६ E ई) पश्चात् काउसग्ग-ध्यान में स्थित और वेल से लिपटी हुई बाहुवलि की मूर्त्ति पर 'काउसग्गे स्थितश्च वाहुबलि' (कायोत्सर्ग किये हुए बाहुबलि)। ब्राह्मी-सुंदरी के समझाने से मान का त्याग करके छोटे भाइयों को वंदनार्थ जाते हुए पैर उठाते ही वाहुवलि को केवल ज्ञान होता है। उस दृश्य की मूर्त्ति पर 'संजात केवलज्ञाने वाहुवलि' और उसके पास ही ब्राह्मी तथा सुन्दरी की मूर्त्ति है, जिस पर 'ब्रतिनी बाभी तथा सुंदरी' लिखा है।

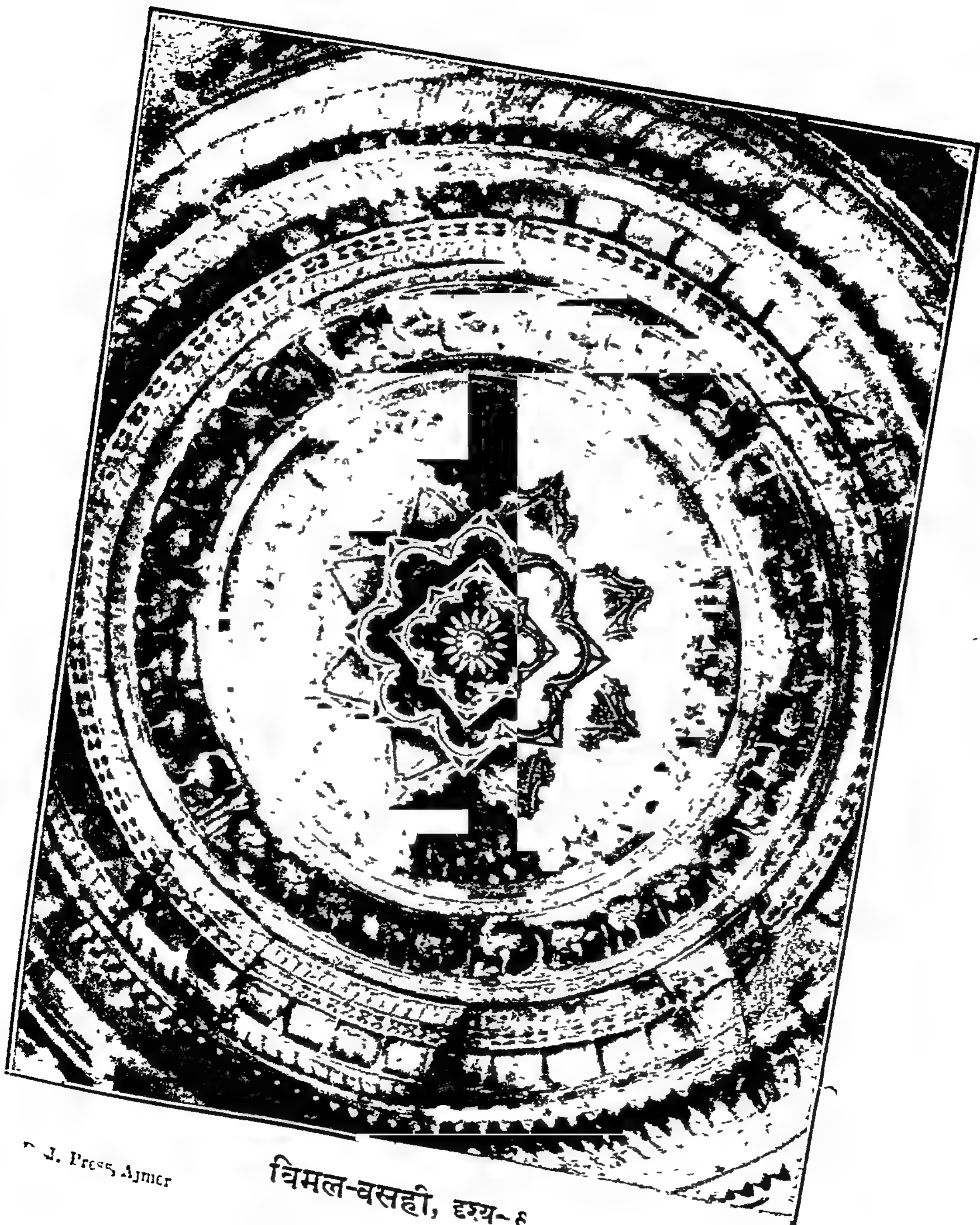
(६ F एफ) एक ओर के कोने में तीन गढ और चौमुखजी सहित भगवान् ऋषभदेव के समवसरण की रचना है। भगवान् की पर्षदा में जानवरों की मूर्त्तियों पर 'मंजारी मूखक' (बिल्ली और चूहा), 'सर्प्प नकुल' (सांप और नौला), 'सवच्छगावि सिंह' (अपने बच्छडे के सहित गाय और सिंह), तथा श्राविकाओं की पर्षदापर 'सुनंदा॥ सुमंगला॥ समस्त श्राव(वि)कानी परिखधाः॥' पुरुषों की पर्षदा-

पर 'इयं हि समस्तश्रावकानां परिखधाः ॥' खड़े खड़े विनय पूर्वक नम्र होकर विनति करने वाली ब्राह्मी और सुन्दरी पर 'विज्ञप्तिक्रियमाणा ब्रांभी सुंदरी ॥............' हाथ जोड़ कर प्रदक्षिणा करते हुए भरत महाराज की मूर्त्ति पर 'प्रदक्षणादीयमानभरथेश्वरस्य ॥' इस प्रकार लिखा है।

एक ओर भरत चक्रवर्त्ति को केवल ज्ञानोत्पत्ति संबंधी दृश्य है। उसमें अंगुठी रहित हाथ की उंगली की ओर दृष्टिपात करती हुई भरत महाराज की मूर्त्ति पर 'अंगुलिक-स्थाननिरीक्षमाणा भरथेश्वरस्य संजातकेवलज्ञानं ॥ अयं भरथेश्वरः ॥' भरत चक्रवर्त्ती को रजोहरण (जैन साधुओं का जंतुरक्षक उपकरण) प्रदान करती हुई देवी की मूर्त्ति पर 'भरथेश्वरस्य संजातकेवलज्ञाने रजोहरणसमर्पणे सानिध्य-देवता समायाता ॥........रजोहरण........सानिध्यदेवता ॥' इत्यादि लिखा हुआ है।

इस गुम्बज के नीचे वाले रंग मंडप के तोरण में दोनों ओर बीच में भगवान् की एक एक मूर्त्ति खुदी है।

(७) उपर्युक्त भरत–बाहुबलि के दृश्य के पास के (मंदिर में प्रवेश करते समय अपने बांयें हाथ की ओर के) गुम्बज के नीचे की चारों दिशाओं की चार पंक्तियों में से



F. J. Press, Ajmer

विमल-वसही, दृश्य-६.

पूर्व दिशा तरफ की लाइन के वीच में भगवान् की मूर्त्ति और दोनों कोनों में सिंहासन पर विराजित आचार्यों की मूर्त्तियां खुदी हुई है । और उनके आस पास श्रावकों पूजा की सामग्री हाथ में लेकर उपस्थित है। उत्तर दिशा की ओर की पंक्ति के वीच में भी भगवान् की मूर्त्ति है । दक्षिण दिशा की पंक्ति में तीन जगह सिंहासन पर नृपति अथवा कोई उच्च पदाधिकारी वैठे है और उनके आस पास सैनिक आदि है। तथा पश्चिम की ओर की पंक्तिमें मल्लयुद्ध आदि हैं ।

(८) भरत-बाहुवलि के दृश्य वाले गुम्वज के पास के, दाहिने हाथ की ओर के गुम्वज के नीचे की चारों दिशाओं की चार लाईनों में राजा, सैनिक आदि की रचना है । किन्तु उत्तर तरफ की पंक्ति में एक कोने में आचार्य महाराज सिंहासन पर वैठे हैं । निकट में दो श्रावक खड़े है, फिर ठवणी है, पश्चात् श्रावक लोग वैठे है ।

(९) इस मन्दिर के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही दरवाजे के पास के पहिले गुम्वज के झुमर (झाड़) के पास की पहिली लाइन में भी आचार्य महाराज सिंहासन पर वैठे हुए हैं। पास में ठवणी है, और श्रावकों की पर्पदा भी निकट में ही वैठी है ।

(१०) उपर्युक्त दृश्य के पास के द्वितीय गुम्बज में वाम (बांयें) हाथ की ओर हाथीयों की पंक्ति के ऊपर की पंक्ति में आर्द्रकुमार-हस्ति प्रतिबोध का दृश्य है ‡। एक हाथी सूंड और अगले दोनों पांव झुका कर साधु महाराज

---

‡ आर्द्रकुमार ने पूर्व भव में अपनी स्त्री सहित दीक्षा-व्रत अङ्गीकार किया था। दीक्षा ग्रहण करने के बाद पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से किसी समय अपनी साध्वी-स्त्री को देखकर उसके प्रति उसका अनुराग-प्रेम उत्पन्न हुआ। जिससे मन द्वारा चारित्र की विराधना हुई। उसका प्रायश्चित किये बगैर ही मृत्यु पाकर वह देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहां का आयुष्य पूर्ण करके आर्द्रक नामक अनार्य प्रदेश में आर्द्रक राजा का आर्द्रकुमार नामक पुत्र हुआ। किसी समय मगध प्रदेश के राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के साथ उसकी पत्र व्यवहार होने से मित्रता हुई। मित्रता होने पर अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को तीर्थंकर भगवान् की मूर्त्ति भेजी। उस मूर्त्ति के दर्शन से आर्द्रकुमार को जाति स्मर्ण ज्ञान (पूर्वभव स्मारक ज्ञान) उत्पन्न हुआ। निज पूर्वभव के दर्शन से वैराग्य की प्राप्ति हुई। जिससे वह अपने अनार्यदेश को छोड़कर आर्यदेश में आया और स्वयं दीक्षा लेली। भगवान् महावीर को वंदन करने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में ५०० चोर मिले। उनको उपदेश देकर दीक्षा दी। वहां से आगे जाते हुए मार्ग में तापसों का एक आश्रम मिला। इस आश्रमवासी तापसों का ऐसा मत था कि—अनाज, फल, शाक, भाजी वगैरह खाने में बहुत से जीवों की विराधना (हिंसा) करनी पड़ती है। इसलिये इन सबकी अपेक्षा हाथी जैसे एक ही महान् प्राणी को मारने से



विमल-वसही— आर्द्रकुमार-हस्ति प्रतिबोधक, दृश्य-१०

D J Press Ajmer

को नमस्कार कर रहा है। साधु उसको उपदेश दे रहे हैं, उनके पीछे दो अन्य निर्ग्रंथ-साधु हैं। और कोने में भगवान् श्री महावीर स्वामी कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हैं। हाथी की बाजु में एक मनुष्य सिंह के साथ मल्ल कुश्ती करता है।

उसके मास से बहुत लोगों को बहुत दिनों तक भोजन चल सकता है और इससे असख्य प्राणियों की हिंसा से विमुक्त हो सकते हैं। (इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'हस्तितापसाश्रम' पड़ा था।) उस हेतु से वे लोग जगल में से एक हाथी को मारने के उद्देश्य से पकड़ कर लाये थे और उसको अपने आश्रम के पास बाधा था।

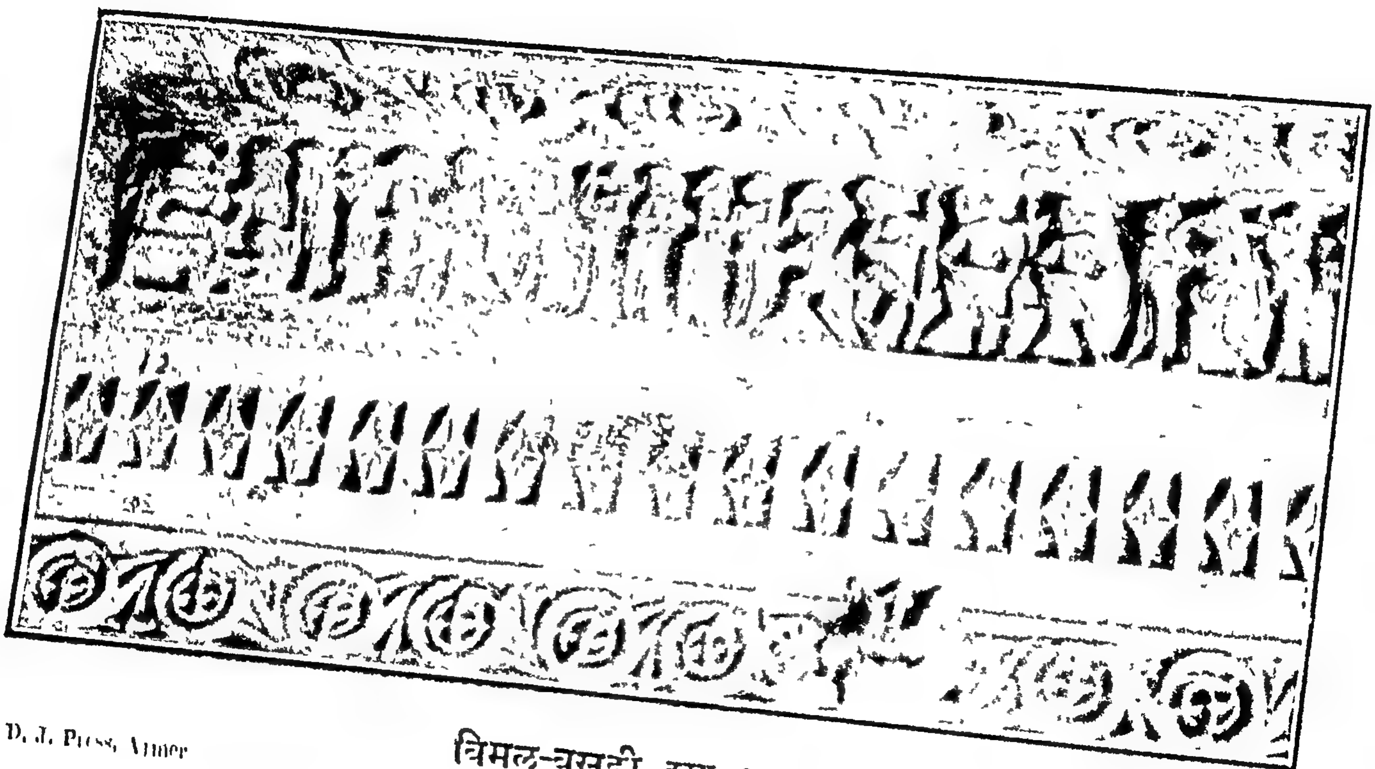
उस मार्ग से गमन करनेवाले आर्द्रकुमारादि मुनियों को देखकर उनको नमस्कार करने की उस हाथी की इच्छा हुई। बस, इस शुभ भावना से और महर्षि के प्रभाव से उस हाथी के बधन खडित हो गये। निरकुश हाथी मुनिराजों को वदन करने के लिये एकदम दौड़ा। सब लोग भय से भागकर दूर जा खड़े हुए और विचारने लगे कि—हाथी अभी हाल ही आर्द्रकुमार मुनि की जीवनयात्रा का नाश कर देगा। परन्तु आर्द्र-कुमार मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए। और उसी स्थान में काउसग्ग ध्यान में खड़े रहे। हाथी, धीरे से उनके निकट आया और उसने अगले दोनों पैर तथा सूड झुकाकर अपना कुम्भस्थल नवाकर नमस्कार किया। एव अपनी सूड से मुनिराज के पवित्र चरणों का स्पर्श किया। मुनि पुङ्गव ने ध्यान पूरा किया और 'यह कोई उत्तम जीव है' ऐसा जानकर उसको खूब उपदेश दिया। हाथी धर्मोपदेश सुन शान्त हुआ और मुनिराज को नमस्कार कर जगल में चला गया। तत्पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने तमाम

(११) देहरी नं० २, ३, ११, २४, २६, ३८, ३६, ४०, ४२, ४३, ४४, ५२, ५३ और ५४ के द्वार के बाहर दोनों ओर के दृश्यों में श्रावक-श्राविका हाथ में पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। ४४, ५२, ५३ और ५४ इन चार देहरियों में इस माफिक विशेष दृश्य है। देहरी नं० ४४ के दरवाज़े के बाहर दाहिनी तरफ की ऊपरी पंक्ति के बीच में एक साधु खड़ा है। ५२ वीं देहरी के दरवाजे के बाहर बांई तरफ प्रथम त्रिक (तीन आदमी) बाँएँ घुटने खड़े करके बैठे हुए चैत्यवंदन कर रहा है। और दाहिने हाथ की तरफ का प्रथम त्रिक घुटने भर बैठ कर वाजित्र बजा रहा है। ५३ वीं देहरी के दरवाजे के बाहर भी दोनों तरफ का प्रथम प्रथम युग्म (दो आदमी) एक एक घुटना खड़ा करके बैठा है। और ५४ वीं देहरी के दरवाजे के बाहर बांयें हाथ की तरफ का प्रथम त्रिक (तीन व्यक्तियों)

तापसों को उपदेश दिया, जिससे सब लोगों ने प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली। यहां से सब साधुओं को लेकर आर्द्रकुमार आगे जा रहे थे। उस समय उपर्युक्त बात की खबर वीरवर मगधाधिपति राजा श्रेणिक व अभयकुमार को मिली। यह समाचार सुनकर वे बड़े हर्षित हुए और आर्द्रकुमार मुनि को वन्दन करने के लिये गये। पश्चात् आर्द्रकुमार मुनि ने भगवान् महावीर की शरण स्वीकार की। वहां आजीवन निर्मल चारित्र पालकर केवल ज्ञान प्राप्त किया और अन्त में मोक्ष के अतिथि हुए।



विमल-वसहि, दृश्य—११, देहरी—४४



विमल-वसही, दृश्य-१२ ख.

D. J. Press, Ajmer

• • का, द्वितीय त्रिक साधुओं का, तीसरा त्रिक साधुओं का, चतुर्थ त्रिक श्रावकों का और पाँचवां त्रिक श्राविकाओं का है। इसी प्रकार दाहिने हाथ की तरफ भी पाँचों त्रिक है [१]।

(१२) सातवीं देहरी के दूसरे गुम्बज की नीचे की लाईनों की नकासी में (क) एक ओर की लाइन के एक कोने में दो साधु खड़े हैं। उनको एक श्रावक पंचाङ्ग नमस्कार करता है। अन्य तीन श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। दूसरी ओर एक काउसग्गिया है। (ख) तीसरी तरफ की पंक्ति के एक कोने में सिंहासन पर आचार्य महाराज बैठे हैं। एक शिष्य उनके पैर दाबता है। एक नमस्कार करता है और अन्य श्रावक व मुनिराज खड़े हैं।

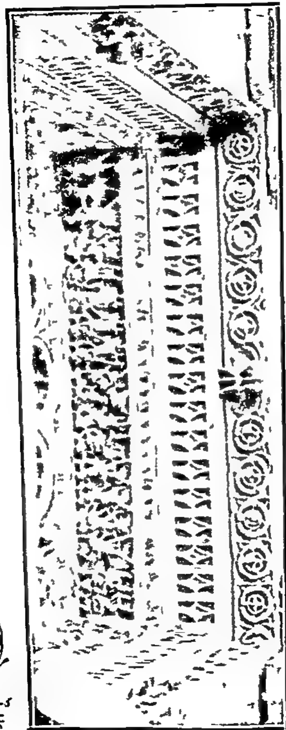
---

१ आज कल जैन लोग वाम घुटना खड़ा रख कर बैठे २ जिस प्रकार चैत्यवन्दन करते हैं, इसी प्रकार इस भाव की नकशी में चैत्यवन्दन करने वाले लोग बैठे हैं। साम्प्रतिक क्रिश्चियन लोग, जो कि घुटने के आधार पर खड़े रह कर प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार वाजित्र बजाने वाले घुटने के बल पर रह कर वाजित्र बजा रहे हैं।

४४ वीं देहरी के बाहर दोनों तरफ के सब से ऊँचे त्रिकों में रहा हुआ भाव बराबर समझ में नहीं आया। सम्भव है कि वे सब जिनकल्पी साधु हों। दोनों ओर के दूसरे व तीसरे त्रिकों में स्थविरकल्पी जैन साधु हैं। उन लोगों ने दाहिना हाथ खुला रख कर आधुनिक प्रथा के अनुसार पिंडली तक नीचे कपड़े पहिने हैं। उनके सबके बगल में रजोहरण, एक हाथ में मुँहपत्ति और दूसरे हाथ में डंडा है।

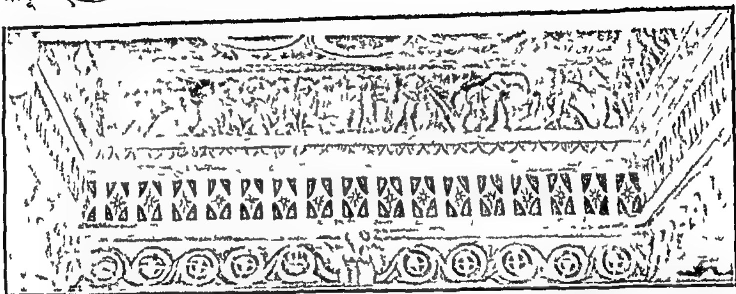
(१३) देहरी आठवीं के प्रथम गुम्बज के दृश्य के मध्य में समवसरण व चौमुखजी की रचना है। द्वितीय एवं तृतीय वलय में एक एक व्यक्ति सिंहासनारूढ है। अवशेष भाग में घोड़े और मनुष्यादि का समावेश है। पूर्व तरफ की सीधी लाइन में एक तरफ भगवान् की एक बैठी मूर्त्ति और दूसरी तरफ एक काउसग्गिया खुदा है। और पश्चिम तरफ की सीधी पंक्ति में एक कोने में दो साधु हैं। पश्चात् एक आचार्य आसनारूढ होकर देशना दे रहे हैं। उनके पास स्थापनाचार्यजी हैं और श्रोता लोग उपदेश श्रवण कर रहे हैं।

(१४) आठवीं देहरी के दूसरे गुम्बज के नीचे की (क) पश्चिम ओर की पंक्ति के मध्य भाग में तीन साधु खड़े हैं। एक श्रावक अपना हाथ नीचे रख कर (लकड़ी की तरह सीधा हाथ रख कर) उनको अब्भुट्ठिओ खमा रहा है (वंदन कर रहा है), और अन्य श्रावक हाथ जोड़े खड़े हैं, (ख) पूर्व दिशा की पंक्ति के बीच में दो मुनिराज खड़े हैं, उनको एक साधु धरती से मस्तक लगा कर पञ्चाङ्ग नमस्कार पूर्वक अब्भुट्ठिओ खमा रहा है। दूसरे श्रावक हाथ जोड़ कर खड़े हैं। इस दृश्य के पास ही एक तरफ एक ऐसा दृश्य दिखलाया गया है, जिसमें एक हाथी मनुष्यों का पीछा कर रहा है, और लोग भाग रहे हैं।



विमल-वसही, दृश्य-१४ क

D J Press, Ajmer



विमल-वसही, दृश्य-१४ ख

D J Press, Ajmer



विमल-वसही, पाँच कल्याणक-दृश्य १५.

J. Press, Ajmer.

(१५) ६ वीं देहरी (मूलनायकजी श्री नेमिनाथजी) के पहिले गुम्बज में पांच कल्याणक आदि दृश्य की रचना है[१]। उसके बीच में तीन गढ वाले समवसरण में भगवान् की एक मूर्त्ति है। दूसरे वलय में (च्यवन कल्याणक में) भगवान् की माता पलंग पर सोते हुए १४ स्वप्न देखती हैं। (जन्म कल्याणक में) इन्द्र महाराज भगवान् को गोद में बैठा कर जन्माभिषेक—जन्म-स्नात्र महोत्सव कराते हैं। (दीक्षा कल्याणक में) भगवान् खड़े २ लोच कर रहे हैं। (केवल ज्ञान कल्याणक में) बीच में बने हुए समवसरण में बैठ कर भगवान् धर्मोपदेश दे रहे हैं। (निर्वाण कल्याणक में) दूसरे वलय में भगवान् काउसग्ग ध्यान में खड़े हैं, यानि मोक्ष गये हैं। तीसरे वलय में राजा, हाथी, घोड़ा, रथ और मनुष्यादि हैं।

---

१ समस्त प्राणियों के लिये तीर्थंकरों के पांच कल्याणक, सुखदायक अथवा मांगलिक प्रसङ्ग माने जाते हैं। ये पांच कल्याणक इस प्रकार हैं— १ च्यवन कल्याणक (गर्भ में आना), २ जन्म कल्याणक, ३ दीक्षा कल्याणक ४ केवल ज्ञान कल्याणक (सर्वज्ञावस्था) और ५ निर्वाण कल्याणक (मोक्ष गमन)। इनमें से प्रथम च्यवन कल्याणक के दृश्य में माता के पलंग पर सोते सोते ही (१) हाथी, (२) वृषभ, (३) केशरी सिंह, (४) लक्ष्मी देवी, (५) पुष्पमाला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य, (८) महाध्वज, (९) पूर्ण कलश, (१०) पद्म सरोवर, (११) रत्नाकर (समुद्र), (१२) देव विमान,

(१६) देहरी १० वीं (मूलनायक श्री नेमिनाथजी) के पहिले गुम्बज में श्री नेमिनाथ चरित्र का दृश्य है ‡। इसके पहिले वलय में श्री नेमिनाथ के साथ श्री कृष्ण और

---

(१३) रत्न राशि और (१४) निर्धूम अग्नि (धूँआँ रहित आग।) इन १४ स्वप्नों के देखने का दृश्य दिखाया जाता है । द्वितीय जन्म कल्याणक में इन्द्र महाराज, जिस दिन भगवान् का जन्म हुआ हो, उसी दिन भगवान् को मेरु पर्वत पर लेजाकर अपनी गोद में लेकर जन्म स्नात्र (स्नान) अभिषेक महोत्सव करते हैं; इसकी, अथवा ५६ दिग् कुमारियाँ बालक सहित माता का स्नान मर्दनादि सूतिकर्म करती हैं; उसकी रचना होती है। तीसरे दीक्षा कल्याणक में दीक्षा का जुलूस और भगवान् का अपने हाथों से केश लुञ्चन करने के दृश्य की रचना होती है । चतुर्थ केवल ज्ञान कल्याणक में भगवान् के केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) प्राप्त होने पर समवसरण (दिव्य व्याख्यान शाला) में बैठ कर देशना देते हैं, इसकी रचना होती है । पांचवें निर्वाण कल्याणक में समस्त कर्मों के क्षय होने से शरीर को त्याग कर मोक्ष गमन के दृश्य में भगवान् कायोत्सर्ग (काउसग्ग) में खड़े हों अथवा बैठे हों ऐसी आकृति की रचना होती है । उपर्युक्त कथनानुसार अथवा उससे कुछ ज्यादा कम रचना होती है। इसे पंच कल्याणक का दृश्य कहते हैं ।

‡ प्राचीनकाल में यमुना नदी के किनारे पर बसे हुए शौरीपुर नामक नगर में यादवकुल में अंधकवृष्णि नामक राजा हो गया । उसके दस पुत्र थे। वे दसों पुत्र दशार्ह कहलाते थे। उनमें सबसे बड़ा समुद्रविजय और कनिष्ठ वसुदेव था। काल क्रमानुसार समुद्रविजय शौरीपुर का शासक नियुक्त हुआ। समुद्रविजय १६ लड़कों का पिता था। उन



विमल-वसही, श्रीशांतिनाथ चरित्र-दृश्य १८

D J Pr Ajmer

उनकी स्त्रियों की जल क्रीड़ा का दृश्य, दूसरे वलय में श्री नेमिनाथ भगवान् का कृष्ण की आयुधशाला में जाना, शंख बजाना और श्री नेमिनाथ एवं श्री कृष्ण की बल

लड़कों में एक अरिष्टनेमि नामक पुत्र था, जो कि पीछे से नेमिनाथ नामक २२ वें तीर्थंकर हुए। वसुदेव के राम तथा कृष्णादि पुत्र थे। जो दोनों बलदेव तथा वासुदेव हुए। श्रीकृष्ण, अवस्था में नेमिकुमार से करीब बारह वर्ष बड़े थे। वासुदेव होने के कारण श्रीकृष्ण, प्रति वासुदेव जरासंध को यमराज का अतिथि बनाकर तीन खड के स्वामी हुए और द्वारिका को राजधानी नियुक्त की। वैराग्य भाव से भूषित होने के कारण नेमिकुमार ने पाणिग्रहण नहीं किया था और राज्य से भी विमुख थे। एक दिन मित्रों की प्रेरणा से नेमिकुमार भ्रमण करते करते श्रीकृष्ण की आयुधशाला में गये। वहा पर उन्होंने अपने मित्रों के मनोरजन के लिये श्रीकृष्ण की कौमुदी नामक गदा उठाई। शारग धनुष को चढ़ाया। सुदर्शन चक्र को फिराया और पाचजन्य शंख को बलपूर्वक खूब ताकत से बजाया। शख ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण को विचार हुआ कि–कोई मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है क्या? (क्योंकि उस शख को बजाने के लिये श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं था)। शीघ्र ही श्रीकृष्ण आयुधशाला में आकर देखने लगे, तो वहा नेमिकुमार को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्ण के मन में इस भाव का सचार हुआ कि —श्रीनेमिकुमार बहुत बलशाली है। तथापि उनके बल की परीक्षा तो करनी ही चाहिये। इस प्रकार का विचार करके उन्होंने नेमिकुमार को कहा कि—'चलो, अपने अखाड़े में जाकर द्वन्द युद्ध करके बल की परीक्षा करें।' श्रीनेमिकुमार ने उत्तर दिया कि–'अपने को इस प्रकार भूमि पर आलोटन करना उचित

परीक्षा का दृश्य दिखलाया है। तीसरे वलय में उग्रसेन राजा, राजीमती, चौरी, पशुओं का निवास-स्थान (वाड़ा), श्री नेमिनाथ की बरात, श्री नेमिनाथ का पाणिग्रहण किये

नहीं है। यदि शक्ति की परीक्षा ही करनी है तो अपने दोनों में से किसी एक को अपना एक हाथ लम्बा करना चाहिये और उस हाथ को दूसरे से झुकवाना चाहिये। जिसका हाथ झुक जाय वह हार गया और जिसका हाथ न झुके उसकी विजय है।' इस प्रस्ताव को दोनों ने ही मंजूर किया और नियमानुसार बल-परीक्षा की। नेमिकुमार ने श्रीकृष्ण का हाथ बहुत ही आसानी से झुका दिया। परन्तु नेमिकुमार का हाथ श्रीकृष्ण के लटक जाने पर भी टस से मस नहीं हो सका। श्रीकृष्ण, नेमिकुमार के बल से परिचित हुए और उनको 'नेमिकुमार मेरे राज्य के स्वामी आसानी से बन जायंगे' ऐसी चिंता होने लगी। श्रीनेमिकुमार को तो प्रारम्भ से ही संसार पर अत्यन्त अरुचि थी। इसी कारण से वे अपने माता-पितादि का अत्यन्त आग्रह होने पर भी पाणिग्रहण नहीं करते थे।

एक समय राजा समुद्रविजय ने श्रीकृष्ण को कहा कि-'नेमिकुमार को पाणिग्रहण के लिये मनाया जावे।' इस कारण से श्रीकृष्ण, अपनी समस्त स्त्रियों और नेमिकुमार को साथ लेकर जल क्रीडा के लिये गये। वहां एक बड़े जलकुंड के अन्दर नेमिकुमार, श्रीकृष्ण और उनकी समस्त स्त्रियां स्नान करने व परस्पर एक दूसरे पर सुगंधी जल और पुष्पादि फेंकने लगीं। स्नान करके कुंड के बाहर आने के बाद श्रीकृष्ण की समस्त स्त्रियां, प्रेमपूर्वक नेमिकुमार को उपालंभ देकर पाणिग्रहण करने के लिये प्रेरणा करने लगीं। नेमि कुछ मुस्कराये। इस स्मितहास्य पर से उन भोजाइयों ने जाहिर किया कि-नेमिकुमार विवाह करने को राजी हो गये।

बगैर ही लोट जाना, श्री नेमिनाथ की दीक्षा का जुलूस, दीक्षा, एवं केवल ज्ञानादि की रचना युक्त दृश्य देखलाया है।

(१७) दसवीं देहरी के द्वार के बाहर बॉई ओर दीवार में, वर्त्तमान चौवीसी के १२० कल्याणक की तिथियॉ, चौवीस तीर्थंकरों के वर्ण, दीक्षा तप, केवल ज्ञान तप तथा

श्रीकृष्ण ने तत्काल ही उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती के साथ लग्न करने का निश्चय किया और समीप में ही दिन निकलवाया। दोनों ओर से विवाह की तैयारिया होने लगीं। लग्न के दिन श्रीनेमिकुमार बरात लेकर श्वसुर के भवन को पहुचे। परन्तु उन्होंने वहा पर देखा कि लग्न प्रसग के भोजन के निमित्त एक स्थान में हजारों पशु एकत्रित किये गये हैं। उस दृश्य को देखने से नेमिकुमार के हृदय में दया भाव का सचार हुआ। परिणाम स्वरूप उन समस्त जीवों को वहा से मुक्त कराकर, अपना रथ पीछा लौटा लिया और विवाह नहीं किया। घर आकर माता-पिता को युक्ति-प्रयुक्ति से समझाये और नेमिकुमार ने बड़े आडम्बर के साथ जुलूस पूर्वक घर से निकल कर गिरिनार पर्वत पर जाकर दीक्षा ली। अपने ही हाथ से केशों का लुचन करके शुद्ध चारित्र अगीकार किया। थोड़े समय बाद ही समस्त कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और प्राणियों को उपदेश देने के लिये विचरने लगे। काल क्रम से आयुष्य पूर्ण होने पर श्रीनेमिनाथ भगवान् नश्वर शरीर को छोड़कर मुक्त हो गये।

विस्तार के साथ जानने की अभिलाषा रखने वाले, 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' का आठवा पर्व अथवा 'श्रीयशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर' से प्रकाशित 'श्रीनेमिनाथ चरित्र महा काव्य' आदि ग्रन्थ देखें।

निर्वाण तप खुदा हुआ है। इस देहरी के दरवाजे के ऊपर वि० सं० १२०१ का, इसके जीर्णोद्धार कराने वाले हेमरथ व दशरथ का खुदवाया हुआ वड़ा लेख है। इस लेख से विमल मंत्री के कुटुम्ब सम्बन्धी वहुत जानने को मिलता है।

(१८) देहरी नं० ११ के पहिले गुम्बज में १४ हाथ वाली देवी की एक मनोहर मूर्त्ति खुदी है।

(१९) देहरी नं० १२ वीं के पहिले गुम्बज में श्री शान्तिनाथ भगवान् के पूर्व भव के मेघरथ राजा के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले एक प्रसङ्ग का एवं पंच-कल्याणक आदि का दृश्य है‡। उसमें मेघरथ राजा का

---

‡ सोलवें तीर्थंकर श्रीशान्तिनाथ भगवान् अपने अन्तिम भव (शान्तिनाथ) के पहिले के तीसरे भव में मेघरथ नामक अवधि ज्ञानी राजा थे। एक समय इशानेन्द्र ने अपनी सभा में मेघरथ राजा की प्रशंसा करते हुए कहा कि—"राजा मेघरथ को उसके धर्म से चलायमान करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है"। सुरूप नामक देव से यह प्रशंसा सहन नहीं हुई। वह मेघरथ की परीक्षा करने के लिये आ रहा था कि मार्ग में उसने बाज पक्षी और कबूतर को परस्पर लड़ते देखकर उनमें आधिष्ठित हो गया। मेघरथ राजा पौषधशाला—उपाश्रय में पौषधव्रत (एक दिन के लिये साधुव्रत) धारण करके बैठे थे। इतने ही में वह कबूतर मनुष्य की भाषा में यह बोलता हुआ कि—'मेरी रक्षा करो, मेरा शत्रु मेरा पीछा कर रहा है' आया और मेघरथ राजा की गोद में बैठ गया। मेघरथ



विमल-वसहि, दृश्य—१६.

D J Press, Ajmer

कबूतर के साथ तराजू में बैठ कर तोल कराने का दृश्य है, तथा साथ ही साथ १४ स्वप्नादि पंच कल्याणक का भी देहरी नं० ६ के गुम्बज के अनुसार दृश्य खुदा है। उसी गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की लाइनों के बीच २ में भगवान् की

राजा ने उत्तर दिया कि—'तू डरना नहीं, मैं तेरी रक्षा करने को तत्पर हूँ।' इतने में वह बाज पक्षी आया और कहा कि—'हे राजन्! यह मेरा भक्ष्य है, मैं बहुत क्षुधार्त हूँ, भूख से मर रहा हूं, इसलिये इसको मुझे दो।' राजा ने उत्तर दिया—'तुझे चाहिये उतना अन्य खाद्य पदार्थ देने को तय्यार हूँ, तू इसको तो छोड़ दे।' उसने उत्तर दिया—'मैं मांसाहारी प्राणी हूँ। इसलिये इसी को खाना चाहता हूँ। फिर भी यदि आप दूसरा ही माँस देना चाहते हैं तो उसी के वजन प्रमाण (जितना) मनुष्य का माँस दीजिये।' राजा ने यह बात स्वीकार करली और तुरन्त तोलने का काँटा (तराजू) मंगवाया। एक पलड़े में कबूतर को रक्खा, दूसरे में मनुष्य का माँस रखने का था, परन्तु मनुष्य का माँस, मनुष्य की हिंसा किये बगैर नहीं मिल सकेगा, और मनुष्य की हिंसा करना महापाप है, ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। राजा जीवदया का पोषक था और आज तो पौषधव्रत में था, इसलिये ऐसा विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक था। दूसरी ओर वह कबूतर को बचाने का वचन दे चुका था। इसलिये दुविधा में पड़ गया कि क्या करना चाहिये। अन्त में उसने अपने शरीर पर के मोह को सर्वथा हटाकर अपने हाथ से ही अपनी पिंडलियों—जाघों का माँस काटकर दूसरे पलड़े में रखने लगा। जैसे जैसे राजा मेघरथ पलड़े में माँस रखता है, वैसे ही वैसे वह देवाधिष्ठित कबूतर अपना वजन बढ़ाने लगा। इतना इतना माँस रखने पर भी तराजू के पलड़े बराबर नहीं होते हैं। यह देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। अन्त

एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है, और इसके आस पास पूरी चारों पंक्तियों में श्रावक हाथ में पुष्पमाला, कलश, फल, चामर आदि पूजा का सामान लिये खड़े हैं।

(२०) १६ वीं देहरी के पहिले गुम्बज में भी उपर्युक्त अनुसार पंच कल्याणक का भाव है। जिन-माता सोते सोते १४ स्वप्न देखती है। जन्माभिषेक, दीक्षा का वर-घोड़ा, भगवान् का लोच करना और काउसग्ग ध्यान में

में राजा ने विचारा कि "मैंने इसके बचाने के लिये प्रतिज्ञा की है, मुझ को अपना वचन अवश्य पालना चाहिये और कैसे भी हो सके, शरणागत कबूतर को बचाना चाहिये। बस, ऐसा विचार करके राजा तुरन्त ही अपने शरीर का बलिदान देने के लिये पलड़े में बैठ गया। इस घटना से सारे नगर व राज दरबार में हाहाकार होगया। राजा जरा भी चलायमान नहीं हुआ और शांतिपूर्वक बाजपक्षी को कहने लगा कि—"मेरे शरीर के सारे माँस को खाकर तू अपनी क्षुधा को शान्त कर और इस कबूतर को छोड़ दे।"

सुरूपदेव समझ गया कि—यह राजा, सचमुच ही इन्द्र की प्रशंसा के योग्य ही है। सुरूप देव ने अपना असली रूप धारण करके राजा के कटे हुए अंगों को अच्छा किया। राजा पर पुष्पवृष्टि की। एवं स्तुति करके, स्वस्थान की ओर चला गया। तब मेघरथ राजा का जय जयकार हुआ।

इस कथा को विस्तृत रूप से देखने की इच्छा रखने वालों को 'त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र' के ५ वें पर्व के चतुर्थ सर्ग को अथवा शान्तिनाथ भगवान् का कोई भी चरित्र देखना चाहिये।

खड़े रहने आदि की रचना है। पहिले वलय में एक समवसरण है, जिसमें भगवान् की एक मूर्त्ति है।

(२० A ए) १६ वीं देहरी के दूसरे गुम्बज के नीचे वाली गोल पंक्ति में बीच बीच में भगवान् की पांच मूर्त्तियाँ खुदी हैं। इन मूर्त्तियों के आसपास के थोड़े भाग के सिवाय सारी लाइन में चैत्यवंदन करते हुए श्रावक हाथों में कलश, फल, पुष्पमाला और चामरादि पूजा की सामग्री तथा नाना प्रकार के वाजित्र लेकर बैठे हैं।

(२० B बी) २३वीं देहरी के पहिले गुम्बज में अंतिम गोल लाइन के नीचे उत्तर और दक्षिण की दोनों सीधी लाइनों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है। उन मूर्त्तियों के आसपास श्रावक पुष्पमालादि लेकर खड़े हैं। अवशेष भाग में नाटक और वाजित्रादि हैं।

(२१) २६ वीं देहरी के पहिले गुम्बज में श्री कृष्ण–कालिय अहि दमन का दृश्य है ‡। बीच के वलय

‡ जैन ग्रन्थानुसार कंस यादवकुल में उत्पन्न हुआ था और मथुरा नगरी के राजा उग्रसेन का पुत्र, मृत्तिकावती नगरी के देवक राजा का भतीजा, 'देवक' राजा की पुत्री देवकी का काका का लड़का भाई होने के कारण श्रीकृष्ण का मामा और तीन खंड भरतक्षेत्र (आधे हिन्दुस्थान) के स्वामी राजगृह नगर के राजा जरासंध प्रति वासुदेव का जमाई होता था। कंस अपने पिता उग्रसेन को कैद करके मथुरा का राजा

में नीचे कालिय नामक भयंकर सर्प फ़न फैला कर खड़ा है। श्रीकृष्ण ने उस सर्प के कंधे पर बैठ कर उसके मुँह में नाथ डाल कर यमुना नदी में उसका दमन किया। थक

हुआ था। कंस की श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के साथ बहुत मित्रता थी। इसी कारण से राजा 'वसुदेव', कंस के आग्रह से अधिकतर मथुरा में ही रहते थे। कंस ने अपने काका देवक राजा की पुत्री देवकी का विवाह वसुदेव से कराया था। इसकी खुशी में कंस ने मथुरा में महोत्सव प्रारंभ किया। उस समय कंस के भाई अतिमुक्त कुमार, जो कि साधु होगये थे, कंस के वहां गोचरी (भिक्षा) के लिये पधारे। कंस की स्त्री जीवयशा उस समय मदिरा के नशे में थी। उसने उस मुनि की कदर्थना (आशातना) की। मुनि यह कह कर चल दिये कि—'जिस वसुदेव देवकी के विवाह के आनन्द में तू खुशी मना रही है, उसी का सप्तम गर्भ तेरे पति और पिता का वध करेगा।' यह सुनते ही जीवयशा के कान खुल गये, नशा उतर गया। उसने तुरंत ही कंस को इस बात की सूचना दी। कंस ने यह सुनकर अपनी पत्नि से कहा—"साधु का वचन कदापि मिथ्या नहीं हो सकता"। भयभीत कंस वसुदेव के पास गया और देवकी के सात गर्भों की याचना की। मुनि वचन से अज्ञात वसुदेव ने भोलपन से यह बात स्वीकार करली। देवकी ने भी, कंस अपना भाई होने के कारण, उपर्युक्त कथन पर वगैर विचारे ही स्वीकृति देदी। पश्चात् देवकी को जब कभी भी गर्भ रहता, तब कंस उसके मकान पर अपना चौकी पहरा नियुक्त करता था, और देवकी से उत्पन्न हुई सन्तान को स्वयं पत्थर पर पछाड़ कर मार डालता था। इस प्रकार उसने देवकी के छः पुत्रों के प्राणों का अपहरण किया। वसुदेव अत्यन्त दुखी रहते थे। लेकिन प्रतिज्ञा पालक होने के कारण, वे अपने वचन का पालन



विमल-वसहि, दृश्य—२१.
श्रीकृष्ण-कालिय अहि दमन

जाने से वह हाथ जोड कर खड़ा रहा है। उसके आस पास उसकी सात नागिनें हाथ जोड़ कर खडी है । बाजू

करते हुए उस दुख को सहन करते थे। सातवें गर्भ के जन्म के समय देवकी के आग्रह से वसुदेव नवजात शिशु (श्रीकृष्ण) को लेकर, रातों रात गोकुल में 'नद' और उसकी स्त्री यशोदा के पास पुत्र के तौर पर छोड़ आये और यशोदा की पुत्री, जो उसी समय उत्पन्न हुई थी, उसको लाकर देवकी के पास छोड़ दिया। कस ने देखा कि–इस गर्भ से तो कन्या उत्पन्न हुई है, वह मुझे कैसे मारेगी ? ऐसा विचार करके कस ने उस कन्या की एक तरफ की नासिका काट कर देवकी को वापिस देदी।

गौकुल में श्रीकृष्ण आनन्द से बढ रहे हैं। तथापि उसकी रक्षा के लिये वसुदेव ने अपने पुत्र राम (बलभद्र) को गोकुल में भेजा । वे दोनों भाई वहा पर आनन्द पूर्वक निवास करते हैं। योग्य अवस्था होते ही श्रीकृष्ण ने बलभद्र से धनुर्विद्या आदि समस्त विद्याओं का ज्ञान सपादन किया, इस प्रकार करीब बारह वर्ष व्यतीत हुए।

इसी अतर में कस ने किसी नैमित्तिक से पूछा कि—'मुनि के कथनानुसार देवकी का सातवा गर्भ मेरा वध करेगा क्या ?' उसने उत्तर दिया 'मुनि का वचन अवश्य सिद्ध होगा' यह सुनकर कस ने नैमित्तिक से पूछा 'मुझे ऐसे चिह्न दिखलाइए जिससे मैं अपने घातक को पहचान सकू।' उसने कहा— "तुम्हारे उत्तम रत्न स्वरूप जातिवत अरिष्ट बैल को, केशी अश्वको, गर्दभ को, मेष (बकरा) को पद्मोत्तर तथा चपक नामक दो हाथियों को और चाणूर नामक मल्ल को जो मारेगा तथा कालिय सर्प का जो दमन करेगा वही तुमको मारेगा।"

कस ने परीक्षा करने के लिये यथाक्रम बैल, घोड़ा, गर्दभ और को गोकुल की ओर छूट कर दिये। वे मदोन्मत्त होने से

के एक कोने में श्रीकृष्ण भगवान् पाताल लोक में शेष-नाग की शय्या करके उस पर सो रहे हैं। श्री लक्ष्मी देवी

बछड़ों को पीड़ा पहुंचाने लगे। गवालों की फरियाद सुनकर श्रीकृष्ण ने उन चारों पशुओं को यमद्वार में पहुंचा दिया। यह समाचार सुनने से कंस को मालूम हुआ कि—मेरा वैरी नंद का पुत्र है, यह जानकर कृष्ण को मारने के लिये कंस ने प्रपञ्च रचा। उसने सैन्यादि सामग्रियां तैयार करके एक दरवार भरा, जिसका मुख्य हेतु मल्लयुद्ध था। इस दरबार में अनेक राजा और राजकुमार आये। वसुदेव ने भी अपने समुद्रविजय आदि समस्त भ्राताओं तथा पुत्र परिवार को भी इस प्रसंग पर बुलाया था। गोकुल में वलभद्र को इस बात की खवर पड़ी। उसने इस प्रसंग को एक अमूल्य अवसर जानकर 'अपने छः भाइयों को मारने वाला कंस अपना शत्रु है' इत्यादि सारी बात कृष्ण को कही। यह सुनते ही श्रीकृष्ण अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसी समय दोनों भाई मथुरा की ओर चले। मार्ग में यमुना नदी आने पर दोनों भाई—श्रीकृष्ण और वलभद्र उस में स्नान करने के लिये कूदे। (महाभारतादि ग्रन्थों में लिखा है कि—श्रीकृष्ण और वलभद्र अपने मित्रों सहित यमुना के किनारे गेंद-दंडा खेलते थे। उनकी गेंद नदी में गिर गई। उसको निकालने के लिये श्रीकृष्ण यमुना नदी में गिरे।) वहां कालिय नामक सर्प अपनी फण के ऊपर के मणि के प्रकाश को श्रीकृष्ण पर डालकर कृष्ण को डराने लगा। श्रीकृष्ण, तुरंत उसको पकड़ कर उसकी पीठ पर सवार होगये। पश्चात् उसके मुख में हाथ डाला और कमलनाल से नाथ डालकर उसको 'यमुना' नदी में बैल की भांति खूब फिराया। जिससे वह शक्तिहीन होगया और थककर श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर खड़ा रह गया और आस पास में

पंखा डाल रही है। एक सेवक पैर दाब रहा है। इस रचना के पास ही श्री कृष्ण और चाणूर मल्ल का युद्ध दिखाया

उसकी सात नागनियाँ भी हाथ जोड़ खड़ी रहकर पतिभिक्षा मांगने लगीं, इससे कृष्ण ने उसको छोड़ दिया।

यहा से दोनों भाई मथुरा की ओर चले। मथुरा के प्रवेश द्वार पर कंस ने अपने पद्मोत्तर और चपक नामक दोनों हाथी तैयार रक्खे थे और महावतों को आज्ञा दी थी कि—नद के दोनों पुत्र आवें तो उन पर हाथियों को छोड़कर उन दोनों को मार डालना। जब ये दोनों भाई दरवाजे पर आये तो महावतों ने अपने स्वामी की आज्ञा का पालन किया। दोनों हाथी मस्तक नवा कर दत शूल से उनको मारना चाहते ही थे कि—श्रीकृष्ण और बलभद्र ने एक २ हाथी के दतशूल निकाल लिये और मुष्टि प्रहार से उन दोनों को यमद्वार में पहुचा दिये।

वहा से ये दोनों भाई मल्ल कुश्ती के दरबार में गये। दरबार में उच्चासन पर बैठे हुए किसी राजकुमार को उठाकर उनके आसन पर ये दोनों भाई बैठ गये। चाणूर और मुष्टिक नामक दो मल्लों ने मल्ल कुश्ती के लिये उन दोनों भाइयों को आह्वान किया। श्रीकृष्ण चाणूर के साथ व बलभद्र मुष्टिक के साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण और बलभद्र ने क्षयमात्र में ही चाणूर और मुष्टिक नामक दोनों मल्लों को मृत्यु के अधीन कर दिये। यह देख कस अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि—इन दोनों भाइयों को मार डालो। यह सुनकर कृष्ण ने कंस को सबोधन करके कहा कि—'मेरे छ: भाइयों को मारने वाला पापी! तेरे दो मल्ल रत्नों को मृत्यु के शरण किये, तो भी बेशरम! तू मुझे मारने की आज्ञा करता है? ले, पापी! मैं तुझे तेरे पाप का प्रायश्चित्त देता हू. ऐसा कहकर एक छलाग मारकर, श्रीकृष्ण ने उसको चोटी से

गया है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण वासुदेव व राम बलदेव और उनके साथी गेंद-दंडा खेल रहे हैं।

(२२-२३) ३४ वीं देहरी के पहिले गुम्बज के नीचे पूर्व दिशा की पंक्ति के मध्य में एक काउस्सग्गिया है, और द्वितीय गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की पंक्तियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है । एवं उसके चारों ओर श्रावक पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं।

(२४-२५) ३५ वीं देहरी के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों ओर की कतारों के बीच २ में एक एक काउस्सग्गिया है। उनके आस पास लोग पूजा की सामग्री हाथ में लेकर खड़े हैं और दूसरे गुम्बज में १६ हाथ वाली देवी की सुंदर मूर्त्ति खुदी हुई है।

पकड़कर सिंहासन से घसीट कर नीचे गिरा कर मार डाला। कंस और जरासंध के सैनिक श्रीकृष्ण से लड़ने को आमादा हुए, लेकिन समुद्र-विजय ने उन सबको हटा दिया। समुद्रविजय वसुदेव आदि ने श्रीकृष्ण व बलभद्र को छाती से लगा लिया। सबकी अनुमति से कारागारस्थ राजा उग्रसेन को निकाल कर मथुरा के राज्य सिंहासन पर बैठाया और समुद्र-विजय, वसुदेव, बलदेव, वासुदेव आदि सब लोग शौरीपुर गये।

विशेष विवरण जानने के लिये 'त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र' के पर्व ८ के सर्ग ५ को देखा जाय।

(२६-२७) देहरी नं० ३८ वीं के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों लाइनों के मध्य २ में भगवान की एक २ मूर्त्ति है। एक तरफ भगवान् की मूर्त्ति के दोनों ओर दो काउस्सग्गिये हैं। प्रत्येक भगवान् के आस पास श्रावक पूजा की सामग्री लेकर खड़े हैं। इसके दूसरे गुम्बज में देव-देवियों की सुंदर मूर्त्तियां खुदी हैं।

(२८) देहरी नं० ३९ वीं के दूसरे गुम्बज में देवियों की मनोहर मूर्त्तिया बनी हैं। इन में हंसवाहनी सरस्वती देवी तथा गजवाहनी लक्ष्मी देवी की मूर्त्तियां मालूम होती हैं।

(२९) देहरी नं० ४० वीं के द्वितीय गुम्बज के मध्य में लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति है। उसके आसपास दूसरे देव-देवियों की मूर्त्तियां हैं। गुम्बज के नीचे चारों तरफ की कतारों के बीच २ में एक २ काउस्सग्गिया है। प्रत्येक काउस्सग्गिया के आस पास हंस अथवा मयूर पर बैठे हुए विद्याधर अथवा देव के हाथ में कलश या फल हैं। घोड़े पर बैठे हुए मनुष्य या देव के हाथ में चामर हैं।

(३०) देहरी नं० ४२ वीं के दूसरे गुम्बज के नीचे दोनों तरफ हाथियों के अभिषेक सहित लक्ष्मी देवी की सुंदर मूर्त्तियां खुदी हुई हैं।

(३१-३२-३३) देहरी नं० ४३, ४४ व ४५ वीं के दूसरे २ गुम्बजों में १६ हाथ वाली देवी की सुंदर एक २ मूर्त्ति खुदी हुई है।

(३४) देहरी नं० ४५ वीं के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों पंक्तियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है। पूर्व दिशा की श्रेणी में भगवान् के दोनों ओर एक २ काउस्सग्गिया है और प्रत्येक भगवान् के दोनों तरफ हँस तथा घोड़े पर बैठे हुए देव या मनुष्य के हाथ में फल अथवा कलश और चामर हैं।

(३५-३६) देहरी नं० ४६ के पहिले गुम्बज के नीचे की चारों तरफ की श्रेणियों के बीच २ में भगवान् की एक २ मूर्त्ति है, एवं उत्तर दिशा की पंक्ति में भगवान् के दोनों तरफ काउस्सग्गिये हैं, और प्रत्येक भगवान् के आस पास श्रावक पुष्पमाल हाथ में लेकर खड़े हैं। इसी देहरी के दूसरे गुम्बज में श्रीकृष्ण भगवान् ने नरसिंह अवतार धारण करके हिरण्यकश्यप का वध किया था, उसका हूबहू चित्र आलेखित किया है।[1]

[1] महाभारत में लिखा है कि—"हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने अति तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर वरदान मांगा था।" (हिन्दु धर्म के अन्य ग्रन्थों में ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि—हिरण्यकशिपु, शिवजी



विमल-वसही, श्रीकृष्ण-नरसिंहावतार, दृश्य



Press, Ajmer

विमल-वसही, दृश्य-२७.

(३७) देहरी नं० ४७ वी के प्रथम गुम्बज में ५६-दिग्कुमारियों—देवियों के किये हुए भगवान के जन्माभिषेक का भाव है। प्रथम वलय में भगवान् की मूर्त्ति है। द्वितीय एवं तृतीय वलय में देवियाँ कलश, धूपदान, पखा, दर्पणादि सामग्री हाथ में लेकर खड़ी है। तृतीय वलय में यह दिखलाया गया है कि—भगवान् की माता को अथवा

का भक्त था, इसलिये शिवजी से उसने वरदान प्राप्त किया था।) उसने यह वरदान मागा था कि—'तुम्हारे निर्माण किये हुए किसी भी प्राणि से मेरी मृत्यु न हो। अर्थात् देव, दानव, मनुष्य, पशु आदि से मेरी मृत्यु न हो। मकान के बाहर व अदर न हो। दिन में व रात में न हो। शस्त्र से व अस्त्र से न हो। पृथ्वी में न हो आकाश में न हो। प्राण रहित से न हो प्राण सहित से न हो।' इत्यादि। इस प्रकार वरदान देने की ब्रह्माजी की इच्छा नहीं थी, परन्तु दैत्य के आग्रह व तपस्या से वश होकर ब्रह्माजी ने वरदान दिया।

हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद नामक पुत्र विष्णु का भक्त हुआ। सारे दिन विष्णु के नाम की माला जपा करता था। उसके पिता ने शिव भक्त होने के लिये बहुत समझाया, परन्तु अनेकों प्रयत्न करने पर भी वह न माना। इसलिये हिरण्यकश्यप उसको खूब सताने लगा। विष्णु भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद को दुःखी देखकर हिरण्यकश्यप को मारने के लिये नरसिंह अवतार धारण किया। ब्रह्माजी के वरदान में किसी प्रकार की स्खलना न आवे, इसलिये ऐसा विचित्र रूप धारण किया, जिसका आधा भाग तो मनुष्य का और मुखादि आधा शरीर सिंह का था। इस प्रकार का नरसिंह अवतार धारण कर विष्णु भगवान ने मकान के अंदर भी नहीं और-

भगवान् को सिंहासन पर बैठा कर देवियाँ मर्दन कर रही हैं और दूसरी ओर सिंहासन में बैठा कर स्नान कराती हैं। इस गुम्बज के नीचे चारों ओर की श्रेणियों के बीच २ में एक एक काउस्सग्गिया है। पूर्व दिशा की पंक्ति में दोनों ओर दो काउस्सग्गिये अधिक हैं। कुल छः काउस्सग्गिये हैं और आस पास में कई लोग पुष्पमाला लेकर खड़े हैं।

(३८) देहरी नं० ४८ वीं के दूसरे गुम्बज में बीस खंड में सुन्दर नक्शी काम है। उन खंडों में के एक खंड में भगवान् की मूर्त्ति है। एक खंड में एक आचार्य्य महाराज पाटे पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठे हैं। उन्होंने अपना एक हाथ, एक शिष्य जो कि पञ्चाङ्ग नमस्कार कर रहा

बाहर भी नहीं, अर्थात् दरवाजे की देहली में; खड़े रह कर; पृथ्वी पर नहीं और आकाश में नहीं, अर्थात् स्वयं पृथ्वी पर खड़े रह कर और हिरण्यकश्यप को अपने दोनों पैरों के बीच में दबा कर; शस्त्र से नहीं और अस्त्र से नहीं एवं सजीव से नहीं और निर्जीव से नहीं, अर्थात् अपने नाखूनों के द्वारा; दिन में नहीं और रात में नहीं, अर्थात् संध्या समय में मार डाला।

विष्णु भगवान् जिस समय नरसिंह अवतार में थे, उस समय वे देव, दानव, मनुष्य और पशु कोई भी नहीं थे। और उस नरसिंह रूप के उत्पादक ब्रह्माजी भी नहीं थे। इसलिये वे अस्खलित रीति से हिरण्यकशिपु को मार सके। इस अवस्था की उत्तम शिल्प कला से युक्त मूर्त्ति खुदी हुई है।

है, उसके सिर पर रक्खा है। दो शिष्य हाथ जोड कर पास में खड़े हैं। दूसरे खंडों में जुदी जुदी तर्ज की खुदाई है। गुम्बज के नीचे की एक तरफ की लाइन के मध्य भाग में एक काउस्सग्गिया है।

(३९) देहरी नं० ४९ के प्रथम गुम्बज में भी उपर्युक्तानुसार बीस खंडों में खुदाई है। एक खंड में भगवान् की मूर्त्ति है। एक खंड में काउस्सग्गिया है। एक खंड में देहरी नं० ४८ की तरह आचार्य्य महाराज की मूर्त्ति है। एक खंड में भगवान् की माता, भगवान् को गोद में लेकर बैठी है। शेप खंडो में भिन्न २ तर्ज की खुदाई है।

(४०) देहरी नं० ५३ के पहिले गुम्बज के नीचे की गोल लाइन में एक ओर भगवान् काउस्सग्ग ध्यान में स्थित है। उनके आस पास श्रावक खड़े हैं। दूसरी ओर आचार्य्य महाराज बैठे हैं, उनके पास में ठवणी (स्थापनाचार्य्य) है और श्रावक हाथ जोड़ कर पास में खडे हुए हैं।

(४१) देहरी नं० ५४ के पहिले गुम्बज के नीचे वाली हाथियों की गोल लाइन के बाद उत्तर दिशा की लाइन के एक भाग में एक काउस्सग्गिया है, उसके आस पास श्रावक हाथ में कलश-पुष्पमाल आदि पूजा सामग्री लेकर खड़े हैं।

(४२) इस मंदिर के मूल गम्भारे के पीछे (बाहर की ओर) तीनों दिशा के प्रत्येक ताकों (आलों) में भगवान् की एक एक मूर्त्ति स्थापित है और प्रत्येक ताक के ऊपर भगवान् की तीन तीन मूर्त्तियां व छः छः काउस्सग्गिये हैं। तीनों दिशाओं में कुल २७ मूर्त्तियाँ पत्थर में खुदी हुई हैं।

विमल-वसहि की भमति (प्रदक्षिणा) में देहरियाँ ५२, ऋषभदेव भगवान् (मुनिसुव्रत स्वामी) का गम्भारा १ और अंबिकादेवी की देहरी १—इस प्रकार कुल ५४ देहरियां हैं। दो खाली कोठड़ियां हैं। जिसमें परचुरण सामान रक्खा जाता है। एक कोठड़ी में तलघर बना है।[1] जो आजकल बिलकुल खाली है। इसके अतिरिक्त विमल-वसही और लूण-वसहि में अन्य ३-४ तलघर हैं। परन्तु वे सब आजकल खाली हों, ऐसा मालूम होता है।

---

१ इस कोठरी में और तलघर की सीढियों पर बहुत कचरा कूड़ा पड़ा था, इसको साफ कराकर हम लोग अंदर गये थे। देखने से एक खड्डे में दबी हुई धातु की ११ प्रतिमाएं मिलीं। जिसमें एक मूर्त्ति अंबिका देवी की थी और शेष मूर्त्तियां भगवान् की थीं। वे लगभग ४०० से ६०० वर्ष की पुरानी मूर्त्तियां थीं। कई मूर्त्तियों पर लेख हैं। इस तलघर में ९ की बड़ी खंडित मूर्त्तियों के थोड़े टुकड़े पड़े हैं।

विमल-वसहि में गूढ मंडप, नव चौकी, रंग मंडप और समस्त देहरियों के दो दो गुम्बजों का एक २ मण्डप गिनने से सारे मन्दिर में ७२ मण्डप होते हैं और गूढ़ मण्डप, नव चौकी, गूढ मण्डप के बाहर की दोनों तरफ की दो चौकियां, रंग मण्डप, प्रत्येक देहरी के दो २ मंडप और दो देहरियों के नये मण्डप वगैरा मिलाकर कुल ११७ मंडप होते है।

विमल-वसहि में संगमरमर के कुल १२१ स्थंभ है। उनमें से ३० अत्यन्त रमणीय नकशी वाले और बाकी के थोड़ी नकशी वाले हैं। इस मंदिर की लम्बाई १४० फीट और चौड़ाई ९० फीट है।



विमल-वसहि की हस्तिशाला

यह हस्ति-शाला विमल-वसहि मंदिर के मुख्य द्वार के सामने बनी हुई है। विमल मंत्री के बड़े भाई मंत्री नेढ, उनके पुत्र मंत्री धवल, उनके पुत्र मंत्री आनंद और आनंद के पुत्र मंत्री पृथ्वीपाल[1] ने विमल-वसहि की कतिपय देहरियों का जीर्णोद्धार कराने के समय स्वकीय कुटुम्ब के स्मरणार्थ सं० १२०४ में यह हस्ति-शाला बनाई है।

हस्तिशाला के पश्चिम द्वार में प्रवेश करते ही विमल-वसहि के मूलनायक भगवान् के सम्मुख एक बड़े घोड़े पर मंत्री विमल शाह बैठे हैं। उनके मस्तक पर मुकट है। दाहिने हाथ में कटोरी-रकाबी आदि पूजा का सामान है और बाएँ हाथ में घोड़े की लगाम है। विमल मंत्री की घोड़े सहित मूर्ति पहिले सफेद संगमरमर की बनी थी, किन्तु आजकल तो मात्र मस्तक का भाग ही असली-संगमरमर का है। गले से

१—पृथ्वीपाल आदि के लिये देखिये इस पुस्तक का पिछला पृष्ठ ३९ से ३८।

नीचे का भाग और घोड़ा नकली मालूम होता है। अर्थात् या तो किसी ने इस मूर्ति को खंडित कर दी हो, जिससे फिर नई बनवा कर खडी की हो; या अन्य किसी हेतु से उस पर चूने का पलस्तर कर दिया हो, ऐसा मालूम होता है। मुखाकृति सुंदर है। घोड़े के पीछे के भाग में एक आदमी, पत्थर का सुदृढ छत्र विमल शाह के मस्तक पर धारण किये हुए खडा है।[1]

इसके पीछे तीन गढ की रचना वाला सुंदर समवसरण है। उसमें चौमुखीजी के तौर पर तीन तरफ सादे परिकर वाली और एक तरफ तीनतीर्थी के परिकर वाली ऐसे कुल चार मूर्त्तियां है। यह समवसरण सं० १२१२ में कोरंटगच्छीय नन्नाचार्य संतान के ओसवाल धांधुक मंत्री ने बनवाया, ऐसा उस पर लेख है।

एक तरफ कोने में लक्ष्मी देवी की मूर्त्ति है।

१—दन्तकथा है कि—छत्रधारक व्यक्ति विमल मंत्री का भानेज है। परन्तु इस कथन की पुष्टि करने वाला प्रमाण किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हुआ है। हीरविजयसूरि रास में लिखा है कि—छत्रधारक व्यक्ति विमल का भतीजा है। इससे अनुमान किया जाता है कि—शायद यह विमल के ज्येष्ठ भ्राता नेढ का दशरथ नामक पौत्र हो।

इस हस्तिशाला के भीतर तीन लाईनों में संगमरमर के सुंदर कारीगरी युक्त झूल, पालकी और अनेक प्रकार के आभूषणों की नकाशी से सुशोभित १० हाथी हैं; इन सब पर एक २ सेठ तथा महावत बैठे थे। परन्तु इस समय इन में के दो हाथियों पर सेठ और महावत दोनों बैठे हैं। एक हाथी पर सेठ अकेला बैठा है। तीन हाथियों पर मात्र महावत ही बैठे हैं। शेष चार हाथी बिलकुल खाली हैं। उन हाथियों पर से ७ सेठों (श्रावकों) की और ५ महावतों की मूर्त्तियां नष्ट हो गई हैं। श्रावकों के हाथ में[1] पूजा की सामग्री है। श्रावकों के सिर पर मुकुट, पगड़ी अथवा अन्य ऐसा ही कोई आभूषण है।

प्रत्येक हाथी के होदे के पीछे छत्रधर अथवा चामर-धर की दो दो खड़ी मूर्त्तियां थीं, किन्तु वे सब खंडित हो गई हैं। उनके पाद चिह्न कहीं कहीं रह गये हैं।

मात्र एक ठक्कुर जगद्देव के हाथी पर पालकी (होदा) नहीं थी और उसके पीछे उपर्युक्त दो मूर्त्तियां भी नहीं

१—हाथियों पर बैठे हुए श्रावकों की मूर्त्तियां चार चार भुजाओं वाली हैं। मेरी कल्पनानुसार चार चार भुजाएँ, हाथ में भिन्न भिन्न पूजा की सामग्री दिखलाने के हेतु से बनवाई गई होंगी। दूसरा कोई कारण नहीं होगा। क्योंकि—वे मूर्त्तियां मनुष्यों की अर्थात् विमलशाह के की हो हैं।

थीं। सिर्फ झूल पर ही ठ० जगदेव की मूर्त्ति बैठाई गई थी (इसका कारण यह मालूम होता है कि—वे महा मंत्री नहीं थे)। इस हाथी की सूंड के नीचे घुड़सवार की एक खंडित छोटी मूर्त्ति खुदी हुई है।

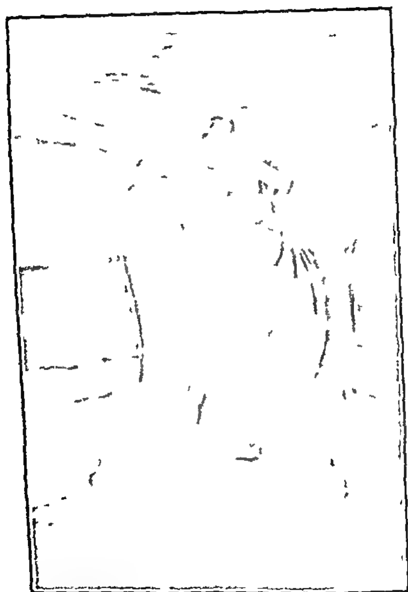
इन हाथियों की रचना इस क्रम से है:—

हस्तिशाला में प्रवेश करते दाहिनी तरफ के क्रम से पहिले तीन हाथी, बांई ओर के क्रम से तीन हाथी और सातवा समवसरण के पीछे का पहिला एक हाथी, इन सात हाथियों को मंत्री पृथ्वीपाल ने वि० सं० १२०४ में बनवाया था। आठवां दाहिने हाथ की तरफ का अन्तिम, नववां समवसरण के पीछे का आखिरी और दसवां वाम हाथ की तरफ का अंतिम, ये तीन हाथी मंत्री पृथ्वीपाल के पुत्र मंत्री धनपाल ने वि० सं० १२३७ में बनवा कर स्थापित किये।

ये हाथी निम्न लिखित नामों से बनवाये गये हैं:—

हाथी का क्रम	किसके लिये बना	संवत्	परिचय
पहला	महामंत्री नीना	१२०४	(विमल मंत्री के कुल वृद्ध)
दूसरा	,, लहर	,,	(नीना का पुत्र)

हाथी का क्रम	किसके लिये बना	संवत्	परिचय
तीसरा	महामंत्री वीर	१२०४	(लहर का वंशज)
चौथा	,, नेढ	,,	(वीर का पुत्र और विमल का बड़ा भाई)
पांचवां	,, धवल	,,	(नेढ का पुत्र)
छठा	,, आनंद	,,	(धवल का पुत्र)
सातवां	,, पृथ्वीपाल	,,	(आनंद का पुत्र)
आठवां	(पउंतार ?) जगदेव	१२३७	(मंत्री पृथ्वीपाल का बड़ा पुत्र और धनपाल का बड़ा भाई)
नववां	महामंत्री धनपाल	,,	(पृथ्वीपाल का छोटा पुत्र और जगदेव का छोटा भाई)
दसवां	....	....	इस हाथी की लेख वाली पट्टी खंडित हो जाने से लेख नष्ट हो गया है। परन्तु यह हाथी भी सं० १२३७ में मंत्री धनपाल ने उसके छोटे भाई, पुत्र अथवा अन्य किसी निकट के सम्बन्धी के नाम से बनवाया होगा।



विमल-वसही की हस्तिशाला में गजारूढ़ महामंत्री नेढ़
[illegible]

(१) हस्तिशाला की पूर्व दिशा के तरफ की खिड़की के बाहर की चौकी के दो स्थंभों पर भगवान् की १६ मूर्त्तियां बनी हुई है (एक २ स्थंभ में आठ २ मूर्त्तियां हैं)। इन स्थंभों के ऊपर के पत्थर के तोरण में रास्ते की तरफ (बाहरी तरफ) भगवान् की ७६ मूर्त्तियां बनी हुई हैं। इन ७६ के साथ दोनों स्थंभों की १६ मूर्त्तियां मिलाने पर कुल ९२ मूर्त्तियां हुई। इनमें की ७२ मूर्त्तियां अतीत अनागत व वर्त्तमान चौवीसी की और अवशिष्ट बीस मूर्त्तियां, बीस विहरमान भगवान की होंगी, ऐसा प्रतीत होता है। इसी तोरण में अंदर के भाग में (हस्ति-शाला की तरफ) भगवान् की ७० मूर्त्तियां खुदी है। किन्तु असल में ७२ होंगी। संभव है दो मूर्त्तियां दीवाल में दब गई हों। अर्थात् यह तीन चौवीसी है, ऐसा समझना चाहिये।

(२) उपर्युक्त चौकी के छज्जे के ऊपर के पत्थर वाले तोरण में दोनों तरफ भगवान् की मूर्त्तियां व काउस्सग्गिये मिलकर एक चौवीसी बनी है।

(३) सारी हस्तिशाला के बाहर के चारों तरफ के छज्जे के ऊपर की पंक्ति में, भगवान् की मूर्त्ति व काउस्सग्गिये मिला कर एक चौवीसी बनी है।

विमल-वसही मन्दिर के मुख्य द्वार और हस्तिशाला के बीच में एक बड़ा सभा मंडप है, उसका निर्माण काल

और निर्माता के विषय में कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं हुई। यह सभा मंडप हस्तिशाला के साथ तो नहीं बना है, क्योंकि-हीर सौभाग्य महाकाव्य से ज्ञात होता है कि- वि. सं. १६३९ में जगत्पूज्य श्रीमान् हीरविजय सूरीश्वर जी यहां पर यात्रा करने को पधारे, उस समय विमल वसहि के मुख्य द्वार में प्रवेश करते हुए जङ्गले वाली सीढी थी। परन्तु उपर्युक्त सभा मंडप नहीं था। उक्त महाकाव्य में मंदिर के अन्य विभागों के वर्णन के साथ ही साथ उपर्युक्त सीढ़ी का भी वर्णन है किन्तु इस सभा मंडप का वर्णन नहीं है। इससे यह मालूम होता है कि—इस सभा मंडप की रचना वि. सं. १६३९ के बाद हुई है।

हस्तिशाला के बाहर के उपर्युक्त सभामंडप में सुरभी (सुरही)-बछड़े सहित गायों के चित्र व शिलालेख वाले तीन पत्थर विद्यमान हैं। उनमें से दो पत्थरों पर वि. सं. १३७२ और एक के ऊपर १३७३ का लेख है। ये तीनों लेख सिरोही के वर्त्तमान महाराव के पूर्वज चौहाण महाराव लुंभाजी (लूंढाजी) के हैं। इनमें 'विमल-वसही व लूण-वसही मंदिरों, उनके पूजारियों व यात्रालुओं से किसी भी प्रकार का टेक्स-कर न लिया जाय' इस आशय के फर्मान लिखे हैं।

इसी रंग (सभा) मंडप के एक स्थंभ के पीछे पत्थर के एक छोटे स्थंभ में इस प्रकार का दृश्य बना है :—

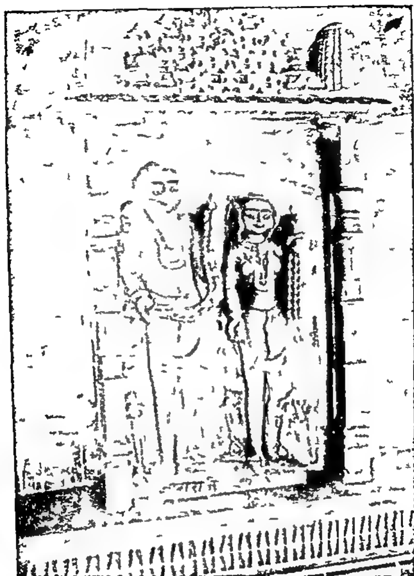
एक तरफ एक पुरुष घोड़े पर बैठा है, एक छत्रधर उस पर छत्र धर रहा है। इस दृश्य के दूसरी तरफ वही मनुष्य हाथ जोड़ कर खड़ा है, इन पर छत्र रखकर एक छत्रधर खड़ा है। पास में स्त्री तथा पुत्र खड़े हैं। उसके नीचे संवत् रहित लेख खुदा है, जिसमें बारहवीं शताब्दि के सुप्रसिद्ध राज्यमान्य श्रावक श्रीपाल कवि के भाई शोभित का वर्णन है।

इस स्थंभ के पास ही दीवाल के नजदीक संगमरमर के एक मूर्त्तिपट्ट[1] में भगवान् के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हुए श्रावक-श्राविका की दो मूर्त्तियाँ बनी हैं। राज्य-मान्य सुप्रसिद्ध महामंत्री कवडि नामक श्रावक ने ये दोनों मूर्त्तियाँ अपने माता-पिता ठ० आमपसा तथा ठ० सीता देवी की बनवा कर आचार्य श्री धर्मघोषसूरिजी के पास उनकी प्रतिष्ठा कराई है। उसके नीचे वि० सं० १२२६ अक्षय तृतीया का लेख है।

---

१ यह मूर्त्तिपट्ट, खण्डित पत्थरों के गोदाम में पड़ा था। हमारी सूचना पर ध्यान देकर यहां के कार्य-वाहकों ने इस मूर्त्तिपट्ट को इस जगह स्थापित कराया। मालुम होता है कि—यह मूर्त्तिपट्ट कुछ वर्षों पहिले विमल-वसहि के श्री ऋषभदेव (श्री मुनिसुव्रत) स्वामि के गम्भारे में था। इसकी मरम्मत होनी चाहिये।

में नागेन्द्र गच्छ के श्रीमान् हरिभद्र सूरि तथा स्वामीस्वरूप महाराजा सिद्धराज को स्वीकार किया था। इसकी धर्मपत्नी का नाम सीतादेवी था, जो महासती सीता के जैसी पतिव्रता और धर्मकर्म में अत्यन्त निश्चल थी। सोमसिंह का आसराज (अश्वराज) नामक पुत्र था; जो बुद्धिशाली, उदार और दाता था। परम मातृभक्त ही नहीं था, बल्कि जैनधर्म का कट्टर अनुयायी भी था। मातृभक्ति को उसने अपना जीवन ध्येय बना लिया था। उसने महा महोत्सवपूर्वक सात बार अथवा सात तीर्थों की यात्रा की थी। उसकी कुमारदेवी नामकी पतिव्रता भार्या थी। यह भी अपने पति के समान ही उदार व जैनधर्मानुयायिनी थी। कुछ समय के बाद आसराज किसी हेतु से अपने कुटुम्बी जन और राजा आदि की अनुमति लेकर अणहिलपुर पाटन के समीपवर्ती सुंहालक नामक गांव में अपने पुत्र कलत्र के साथ सुखपूर्वक रह कर व्यापारादि कार्य करने लगा। वहां आसराज को कुमारदेवी की कुक्षि से लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल नामक चार पुत्र तथा जाल्हू, माऊ, साऊ, धनदेवी, सोहगा, वयजु और परमलदेवी नामक सात पुत्रियाँ हुईं। ये



लूण-वसही की हस्तिशाला में,
महा मन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल के माता पिता

D J Press Ajmer

सातों बहिनें, स्थूलिभद्र स्वामी की सात बहिनों की तरह बुद्धिशालिनी और धर्म कार्य में रत ऐसी श्राविकाएँ थीं।

मंत्री लूणिग राज्य कार्य पटु, शूरवीर व तेजस्वी युवक था। किन्तु आयुष्य कम होने के कारण युवावस्था के प्रारम्भ में ही वह काल कवलित हो गया। उसकी पत्नी का नाम लूणादेवी था। मंत्री मल्लदेव भी राज्य कार्य में निपुण, महाजन शिरोमणि और धार्मिक कार्यों में तत्पर रहने वाले लोगों में मुख्य था। उसके लीलादेवी और प्रतापदेवी नामक दो धर्मपत्नियाँ थीं। मल्लदेव लीलादेवी का पूर्णसिंह नामक पुत्र था। इसकी पहिली भार्या का नाम अल्हणादेवी था। पूर्णसिंह–अल्हणादेवी के पुत्र का नाम पेथड़ था। पेथड़ इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय विद्यमान था। पूर्णसिंह की दूसरी स्त्री का नाम महणदेवी था। पूर्णसिंह के दो बहिनें थीं, सहजलदे और सदमलदे; और वलालदे नामकी एक पुत्री भी थी।

महामात्य श्री वस्तुपाल–तेजपाल—महामात्य वस्तुपाल–तेजपाल; शूरवीरता, धार्मिक कार्य परायणता, राज्यकार्य दक्षता, प्रजावत्सलता, सर्व धर्म पर समान दृष्टिता, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता और उदारता आदि अपने गुणों

से आबाल-वृद्ध में प्रसिद्ध हैं। अतः उनके विषय में विवेचन करना, सिर्फ पिष्टपेषण ही करना है। इसलिये उनके गुणों का वर्णन न करके, मात्र उनके कुटुंबादि का परिचय संक्षेप में कराया जाता है।

मंत्री वस्तुपाल राज्य कार्य में हमेशा तत्पर रहने पर भी अपूर्व विद्वान् थे। उनके समकालीन कवि उनका परिचय 'सरस्वती देवी के धर्मपुत्र' इस प्रकार कराते हैं। क्योंकि—उनके घर में सरस्वती व लक्ष्मी दोनों का निवास था। ऐसा अन्य स्थानों में बहुत ही कम दिखाई देता है।

मंत्री वस्तुपाल के ललितादेवी और वेजलदेवी नाम की दो धर्मपत्नियाँ थीं। ललितादेवी गुण भण्डार और बुद्धिमती होगी, ऐसा मालूम होता है। क्योंकि—मंत्री वस्तुपाल, उसका बहुत आदर-सम्मान करते थे और घर के खास खास कामों में उसकी सलाह लिया करते थे। ललितादेवी की कुक्षि से उत्पन्न जयन्तसिंह (जैत्र-सिंह) नामक वस्तुपाल का पुत्र था। जो सूर्यपुत्र जयन्त से किसी प्रकार कम न था। वह भी अपने पिता के साथ व स्वतंत्र रीत्या राज्य कार्य में दिलचस्पी लिया करता था। उसके जयतलदेवी, जम्हणादेवी और रूपादेवी नामक तीन स्त्रियां थीं।



लण-वसहि की हस्तिशाला में,
महा मन्त्री वस्तुपाल और उनकी दोनों स्त्रिया

D J Press Ajmer



लूण-वसहि मंदिर के निर्माता
महामन्त्री तेजपाल और उनकी पत्नी अनुपम देवी

महामात्य तेजपाल की दो पत्नियाँ—अनुपमदेवी और सुहडादेवी—थीं। अनुपमदेवी की कुक्षिसे महा प्रतापी, बुद्धिशाली, शूरवीर और उदार दिल लूणसिंह (लावण्यसिंह) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह राज्य कार्य में भी निपुण था। पिता के साथ व स्वयं अकेला भी युद्ध, संधि, विग्रहादि कार्यों में भाग लेता था। इसके रयणादेवी और लखमादेवी नामक दो स्त्रियाँ व गउर-देवा नामक एक पुत्री थी। (तेजपाल के) सुहडादेवी की कूख से सुहडसिंह नामक एक दूसरा पुत्र हुआ था। उसके सुहड़ादेवी और सुलखणादेवी ये दो स्त्रियाँ थीं। मन्त्री तेजपाल को बउलदे नामक एक पुत्री भी थी।

मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल अपने पिताकी विद्यमानता में अपनी जन्मभूमि सुंहालक में ही रहे, परन्तु पिताजी का स्वर्गवास होने के बाद दिल नहीं लगने से, गुजरात के मंडलि (माडल) गांव में सकुटुम्ब रहने लगे। काल-क्रमानुसार उनकी माता भी पंचत्व को प्राप्त हुई। मातृ वियोग का शोक दोनों भाईयों के लिये असाधारण था। उस समय, वस्तुपाल-तेजपाल के मातृपक्ष के गुरु मलधार गच्छीय श्री नरचन्द्रसूरीश्वर विचरते विचरते मंडलि गांव में पधारे। उन्होंने उपदेश द्वारा कर्म स्वरूप समझा

कर दोनों भाईयों का शोक दूर कराया और तीर्थयात्रादि धर्म कार्य में तत्पर रहने के लिये प्रेरणा की।

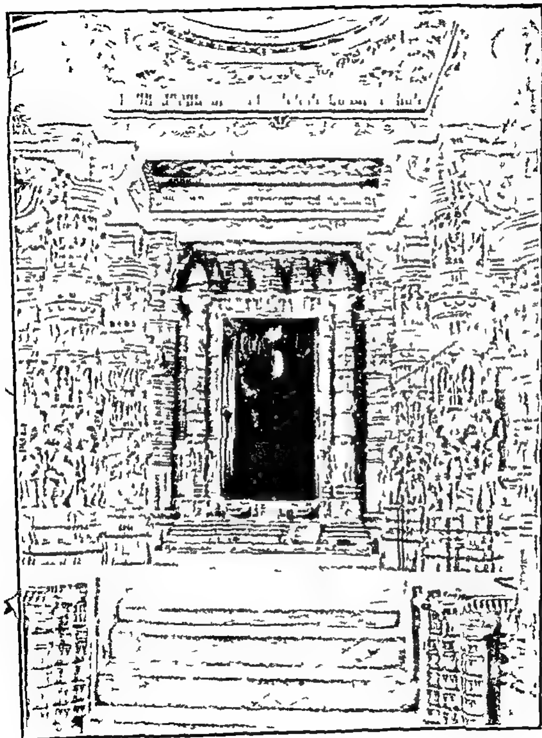
नागेन्द्र गच्छीय श्री आनन्दसूरि-अमरसूरि के पट्टधर श्रीमान् हरिभद्रसूरि के शिष्य श्री विजयसेनसूरि, जो वस्तुपाल-तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु थे, उनके उपदेश से उन दोनों भाईयों ने शत्रुंजय तथा गिरिनार तीर्थ का ठाठ बाठ से बड़ा भारी संघ निकाला और संघपति होकर दोनों तीर्थों की शुद्ध भाव पूर्वक यात्रा की।

चौलुक्य (सोलंकी) राजा—गुजरात की राजधानी अणहिलपुर पाटन के सिंहासन के अधिपति सोलंकी राजाओं में के कुमारपाल महाराज तक के कतिपय नाम विमलवसहि के प्रकरण में आगये हैं। महाराज कुमारपाल के बाद उनका पुत्र अजयपाल गद्दी पर आरूढ हुआ। अजयपाल की गद्दी पर मूलराज (द्वितीय) और मूलराज की गद्दी पर भीमदेव (द्वितीय) गुजरात का महाराजा हुआ। उस समय गुर्जर राष्ट्रान्तर्गत धवलक्कपुर (धोलका) में महामंडलेश्वर सोलंकी अर्णोराज का पुत्र लवणप्रसाद राजा था और उसका पुत्र वीर धवल युवराज था। ये गुजरात के महाराजा के मुख्य सामंत थे। महाराजा

भीमदेव उन पर बहुत प्रसन्न था। इस कारण से उसने अपनी राज्य-सीमा को बढाने का व संभाल रखने का कार्य लवणप्रसाद को सौंपा और वीरधवल को अपना युवराज बनाया। वीरधवल की, कुशल मन्त्री के लिये याचना होने पर भीमदेव ने वस्तुपाल और तेजपाल को बुलाया और उन दोनों को महा-मन्त्री बनाकर, वीर-धवल के साथ रहते हुए कार्य करने की सूचना दी। मन्त्री वस्तुपाल को धोलका और खंभात का अधिकार दिया गया और मन्त्री तेजपाल को संपूर्ण राज्य के महा-मन्त्री पद पर निर्वाचन किया गया।

युवराज वीरधवल व मंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने गुजरात की राज्य-सत्ता को खूब विस्तृत बनाया। आस पास के मातहत राजा, जो स्वतंत्र होगये थे, अथवा स्वतंत्र होना चाहते थे, उन सब पर विजय प्राप्त करके, उनको गुर्जराधि-पति के आधीन किये। इसके उपरान्त आस पास के देशों पर भी विजय ध्वजा फहराकर गुजरात की राज्य-सत्ता में वृद्धि की। महामंत्री वस्तुपाल-तेजपाल ने कई समय लड़ाईयां लड़ी थीं। कभी बुद्धिबल से तो कभी लड़ाई से, इस प्रकार उन्होंने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इतने बड़े शूरवीर और सत्ताधीश होने पर भी उनको किसी पर

उन सबमें आबू पर्वतस्थ यह लूण वसहि नामक जैन मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। मंत्री वस्तुपाल के लघु भाई तेजपाल ने अपनी धर्मपत्नी अनुपमदेवी व उसकी कुक्षि से उत्पन्न हुए पुत्र लावण्यसिंह के कल्याण के लिये, गुजरात के सोलंकी महाराजा भीमदेव (द्वितीय) के महा-मंडलेश्वर आबू के परमार राजा सोमसिंह की अनुमति लेकर आबू पर्वतस्थ देलवाड़ा गांव में विमल वसही मंदिर के पास ही उसीके समान; उत्तम कारीगरी—नकशी-वाले संगमरमर का; मूल गंभारा, गूढ मंडप, नव चौकियाँ, रंग मंडप, वलानक (द्वार मंडप-दरवाजे के ऊपर का मंडप), खत्तक (ताक-आले), जगति (भमती) की देहरियाँ तथा हस्तिशालादि से अत्यन्त सुशोभित श्री नेमिनाथ भगवान् का, श्रीलूणसिंह (लावण्यसिंह)—वसहि नामक भव्य मंदिर करोड़ों रुपये खर्च करके तैयार कराया। इस मंन्दिर में श्री नेमिनाथ भगवान् की कसौटी के पत्थर की अत्यन्त रमणीय व बड़ी मूर्त्ति बनवा कर मूलनायकजी के तौर पर विराजमान की। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा, श्री नागेन्द्र गच्छ के महेन्द्रसूरि के शिष्य शान्तिसूरि, उनके शिष्य आनंद-सूरि-अमरसूरि, उनके शिष्य हरिभद्र सूरि, उनके शिष्य श्री विजयसेन सूरि द्वारा भारी आडंबर और महोत्सव पूर्वक



लूण-वसही का भीतरी दृश्य

D. J. Press Ajmer

वि. सं. १२८७ के चैत्र वदि ३ (गुजराती फागुन वदि ३) रविवार के दिन कराई। इस मंदिर के गूढ मंडप के मुख्य द्वार के बाहर नव चौकियों में दरवाजे के दोनों तरफ वढ़िया नकशीवाले दो ताख (आले) हैं, (जिनको लोग देराणी-जेठानी के ताख कहते हैं)। ये दोनों आले मंत्री तेजपाल ने अपनी दूसरी स्त्री सुहडादेवी के स्मरणार्थ तैयार कराये हैं। मं. तेजपाल ने भमती की कई एक देहरियाँ अपने भाइयों, भुजाइयों, बहिनों, अपने व भाइयों के पुत्र, पुत्र-वधुओं और पुत्रियों आदि समस्त कुटुंब के कल्याणार्थ बनवाई हैं। कुछ देहरियाँ उनके श्वसुर पक्ष के व अन्य परिचित लोगों ने बनवाई हैं। इन सब देहरियों की प्रतिष्ठा वि. सं १२८७ से १२९३ तक में और उपर्युक्त दोनों ताखों की प्रतिष्ठा वि. सं. १२९७ में हुई थी।

इस मंदिर का नकशी काम भी विमलवसही जैसा ही है। विमल-वसही और लूण-वसही मंदिरों की दीवारें, द्वार, बारसाख, स्तंभ, मंडप, तोरण और छत के गुम्बजादि में न मात्र फूल, झाड, वेल, धूंटा, हंडियाँ और झूमर आदि भिन्न भिन्न प्रकार की विचित्र वस्तुओं की खुदाई ही की है; बल्कि इसके उपरान्त हाथी, घोड़े, ऊँट, व्याघ्र, सिंह, मत्स्य, पक्षी, मनुष्य और देव-देवियों की नाना प्रकार की मूर्त्तियों के

साथ ही साथ, मनुष्य जीवन के जुदे जुदे अनेक प्रसंग, जैसे कि–राज दरबार, सवारी, वरघोड़ा, वरात, विवाह प्रसंग में चौरी वगैरह, नाटक, संगीत, रणसंग्राम, पशु चराना, समुद्रयात्रा, पशुपालों (अहीरों) का गृह-जीवन, साधु और श्रावकों की अनेक प्रसंगों की धार्मिक क्रियाएँ, व तीर्थकरादि महा पुरुषों के जीवन के अनेक प्रसंगों की भी इतनी मनोहर खुदाई की है कि–यदि उन सब प्रसंगों पर सूक्ष्म रीति से दृष्टिपात किया जाय तो मंदिर को छोड़ कर बाहर आने की इच्छा ही न हो।

इन दोनों मंदिरों की नकशी को देखने वाले मनुष्य के मस्तिष्क में स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न गूंज उठता है कि–इन दोनों मंदिरों में से किस मंदिर में अच्छी नकाशी है? किन्तु इस प्रश्न का निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। प्रेक्षकवर्ग स्वेच्छानुसार दो में से किसी एक को प्रधान पद देते हैं–दे सके हैं। मैं भी अपने नम्र मतानुसार नकाशी की बारीकी व श्रेष्ठता पर दृष्टिपात करके विमल-वसही मंदिर को प्रधान पद देता हूं। क्योंकि लूण-वसहि में खुदाई की सूक्ष्मता व सुन्दरता अधिक है। जब कि विमल-वसहि में इसके उपरान्त मनुष्य जीवन से संबंध रखने वाले अनेक प्रसंगों की नकशी व खुदाई अधिक है ।

इस लूण-वसही मंदिर को बनाने वाला शोभनदेव नामक मिस्त्री-कारीगर था। इस मंदिर की प्रशस्ति के बड़े शिलालेख के निकट के दूसरे शिलालेख से यह मालूम होता है कि—मंत्री तेजपाल ने स्वबुद्धि बल से इस मंदिर की रक्षा के लिये तथा वार्षिक पर्वों के दिन पूजा-महोत्सवादि हमेशा अस्खलित रीति से चालू रहे, इसके लिये उत्तम व्यवस्था की थी। जैसे—

(१) मंत्री मल्लदेव, (२) मंत्री वस्तुपाल, (३) मंत्री तेजपाल और (४) लावण्यसिंह का मौसाल पक्ष [लावण्यसिंह के मामा चन्द्रावति निवासी (१) खिम्बसिंह, (२) आम्बसिंह और (३) ऊदल तथा लूणसिंह, जगसिंह, रत्नसिंह आदि] और इन चारों की संतान परंपरा को, हमेशा के लिये इस मंदिर के ट्रष्टी मुकर्रर किया, ताकि वे तथा उनकी संतान परंपरा इस मंदिर की सब प्रकार की देख रेख रक्खें और स्नात्र-पूजादि कार्य हमेशा करें-करावें और जारी रक्खें।

इस मंदिर की सालगिरह (वर्षगांठ) के प्रसंग पर अट्ठाई महोत्सव और श्री नेमिनाथ भगवान् के पाँचों कल्याणक के दिनों में पूजा महोत्सवादि हमेशा होते रहें, इसके लिये इस प्रकार की व्यवस्था की—

चन्द्रावती, उवरणी तथा किसरउली गांव के जैन मंदिरों के सभी ट्रस्टी और समस्त महाजन लोगों को सालगिरह निमित्त अट्ठाई महोत्सव के प्रथम दिन-चैत्र कृष्णा ३ के दिन महोत्सव करना, चैत्र कृष्णा ४ के दिन कासहद गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ५ के दिन ब्रह्माण गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ६ के दिन धउली गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ७ के दिन मुंडस्थल महातीर्थ के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ८ के दिन हंडाउद्रा तथा डवाणी गांव के श्रावकों को, चैत्र कृष्णा ९ के दिन मडाहड गांव के श्रावकों को, और चैत्र कृष्णा १० के दिन साहिलवाड़ा गांव के श्रावकों को प्रति वर्ष महोत्सव करना तथा श्री नेमिनाथ भ० के पांचों कल्याणक के दिन देउलवाड़ा गांव के श्रावकों को हमेशा महोत्सव करना।

इस प्रसंग पर चंद्रावती के परमार राजा सोमसिंह ने पूजा आदि खर्च के लिये डवाणी नामक ग्राम श्री नेमिनाथ भगवान् को अर्पण किया ‡ तथा इस दान को हमेशा मंजूर रखने के लिये आगामी परमार राजाओं को उन्होंने विनयपूर्वक फरमान किया था।

‡ यह गांव पीछे से सिरोही राज्य ने अपने अधिकार में ले लिया है।

प्रतिष्ठा उत्सव के समय लूण-वसहि मंदिर के रंग मंडप में बैठ कर चंद्रावती के अधिपति राजकुल श्री सोमसिंह, उनका राजकुमार कान्हड़ (कृष्णराज) आदि कुमार, राज्य के समस्त अधिकारी, चंद्रावती के स्थानपति भट्टारकादि, गूगुली ब्राह्मण, समस्त महाजन तथा अर्बुदाचल के अचलेश्वर, वशिष्ठ, देउलवाड़ा ग्राम, श्री श्रीमाता महडु ग्राम, आवुय ग्राम, ओरासा ग्राम, उत्तरछ ग्राम, सिहर ग्राम, साल ग्राम, हेठउंजी ग्राम, आखी ग्राम, श्रीधांधलेश्वर देवीय कोटडी ग्राम आदि ग्रामों में निवास करने वाले स्थानपति, तपोधन, गूगुली ब्राह्मण, राठिय आदि समस्त लोगों तथा भालि, भाड़ा आदि गांवों के रहने वाले प्रतिहार वंश के सब राजपूत आदि समस्त लोगों के समक्ष यह सब व्यवस्था की गई थी।

इस सभा में सम्मिलित उपर्युक्त समस्त सभासदों ने अपनी राजी खुशी से भगवान् के समक्ष मंत्री तेजपाल से, इस मंदिर की सब तरह सार संभाल रक्षादि करने का कार्य अपने सिर पर लिया था।

इस प्रकार महामात्य तेजपाल ने ऐसा श्रेष्ठ मंदिर बनवाकर व उसकी सार-संभाल-रक्षादि के लिये उपर्युक्त

कथनानुसार उत्तम व्यवस्था करके अपनी आत्मा को कृतार्थ बनाया।

मंदिर का भंग व जीर्णोद्धार—विमलवसहि के वर्णन (पृ० ३९ और उसके नीचे के नोट) के अनुसार विमलवसहि मंदिर के भंग के साथ मुसलमान बादशाह के सैन्य ने वि० सं० १३६८ के लगभग इस मंदिर के भी मूल गंभारा और गूढ मंडप का नाश किया था और अन्य भी कतिपय भागों को नुकसान पहुंचाया था।

इसके बाद व्यवहारी (व्यापारी) चंडसिंह का पुत्र श्रीमान् संघपति पेथड़ संघ लेकर यहां यात्रा करने को आया। उस समय उसने अपने द्रव्य से इस मंदिर का वि० सं० १३७८ में जीर्णोद्धार कराया अर्थात् नष्ट हुवे भाग को फिर से बनवाया और श्री नेमिनाथ भगवान् की नई मूर्ति बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा कराई।

मूर्त्ति संख्या और विशेष हकीकत—

मूल गंभारे में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान् की श्याम वर्ण की परिकर युक्त सुन्दर मूर्त्ति १, पंचतीर्थी के